द्वितीय अध्याय

साहित्यिक वातावरण एवं आधुनिक खण्डकाव्य

आधुनिक काल : वातावरण

आधुनिक खण्डकाव्यधारा अपने प्रारंभ से लेकर निरंतर गतिशील रही है। विभिन्न परिस्थितियों एवं युग-चरणों को पार करने वाली यह काव्यधारा भाव एवं रूप में परिवर्तन लेकर आयी । `भारतेन्दु युग` से लेकर `नयी कविता` के युग तक की समूची खण्डकाव्य धारा में यह परिवर्तन परिलक्षित होता है । हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अपने पूर्ववर्ती कालों से कई बातों में नितांत भिन्न रहा है । हिन्दी के आदिकालीन तथा रीतिकालीन साहित्य मुख्यतया दरबारी साहित्य रहा है । राजकीय मनोवृत्ति तथा आश्रयदाता राजाओं की तुष्टि को ध्यान में रखकर ही इनका निर्माण हुआ । भक्तिकाल का साहित्य जनता का साहित्य रहा, परन्तु वह भी जीवन के यथार्थ से कोसों दूर का रहा । आधुनिक काल का साहित्य सच्चे अर्थ में जनता का, उनके वास्तविक जीवन का साहित्य रहा । हिन्दी के आधुनिक साहित्य ने भारत के साधारण लोगों की वाणी को मुखरित किया । `आधुनिक हिन्दी साहित्य भारतीय समाज के एक सर्वथा नये वर्ग की वाणी को मुखरित करता है जो कि नवीन शासन-प्रणाली तथा नूतन अर्थ-व्यवस्था के परिणाम-स्वरूप पीड़ित और शोषित था -- वह था मध्यवर्ग ।. . . . साहित्य में जीवन का अधिक व्यापक चित्रण होने से वह हमारे जीवन के अधिक निकट आ सका ।`[१] आधुनिक काल में आकर भारतेन्दु युग ने शदियों से चली आयी `भक्ति` तथा `रीति` के मार्ग से विमुख होकर जीवन के यथार्थ को मुखरित किया । द्विवेदी युग ने राष्ट्रीय नव जागरण की वाणी दे दी । फिर छायावादी युग ने स्थूल बाह्य को छोड़ सूक्ष्म सजीव को सबल किया तथा छायावादोत्तर युग ने आगे बढ़कर जीवन यथार्थ का नव-मूल्यांकन किया । इन सभी परिवर्तनों के मूल में बदलते सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का हाथ दर्शनीय है ।

जनता की चित्तवृत्ति का संचय ही तो प्रत्येक देश के साहित्य में निहित रहता है । जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ देश की सामाजिक, राजनीतिक, सांप्रदायिक परिस्थितियों के अनुकूल होती है । यों परिस्थिति के अनुसार साहित्य में भी परिवर्तन का दिग्दर्शन अवश्यंभावी है । कहा भी गया है -- कवि एवं काल के बीच आपसी प्रभाव रहता है ।[२] तत्कालीन भारत-

---

१- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - प्रो० शिवकुमार शर्मा, पृ० ४१३.
२- Poet and the age react upon each other.

वर्ष की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का चित्र ही आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य में उपलब्ध है । हिन्दी के खण्डकाव्य भी इसके अपवाद नहीं ।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संघर्ष सम्पर्क और समन्वय का अखाड़ा रहा है । आधुनिक कालीन साहित्यिक वातावरण के आधिकारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उक्त सामयिक परिस्थितियों का परिज्ञान आवश्यक है । यहाँ यह देखना है कि किन-किन परिस्थितियों के बीच उक्त काल में हिन्दी के खण्डकाव्य रचे गये । वस्तुत मध्यकालीन हिन्दी खण्डकाव्य से, आधुनिक खण्डकाव्य रूप, वस्तु आदि सभी दृष्टियों से भिन्न दृष्टिगत होता है । सामयिक परिस्थितियों की भिन्नता ही उसके कारण के मूल में होगी । आधुनिक हिन्दी काव्य पर उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी की विभिन्न परिस्थितियों का स्वर ही मुख्यतया गुंजायमान है । प्रबंध की कालसीमा सन् १६०० से १६७० तक है, अत: उक्त काल का ही विशद एवं विश्लेषणात्मक विवेचन आवश्यक है ।

१. आधुनिक काल एवं नव-चेतना

हिन्दी साहित्य का यह काल (आधुनिक) अक्सर अंग्रेजी राज्य एवं अंग्रेजी प्रभाव से सम्बद्ध किया जाता है । अंग्रेजी राज्य में नवीन शिक्षा एवं वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रचुर प्रचार के कारण देश में क्रांतिकारी, सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक परिवर्तन उपस्थित हुए । इन परिवर्तनों के कारण विविध प्रकार के आन्दोलनों से भारतीय जन-जीवन स्पन्दित हो गया । भारतवासी ने अपने अलसाये जीवन से अंगड़ाई ले ली । उज्ज्वल भविष्य को दृष्टिपथ में रखकर वे आगे बढ़े । मध्ययुगीन पतन के बाद इस नवजागरण ने देश की आत्म-गरिमा को पुन: जाग्रत कर दिया । समन्वयवाद को अपना कर भारतवासी ने पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान के साथ भारतीय आध्यात्मिकता को भी प्रमुख स्थान दे दिया । आधुनिक कालीन साहित्य में यह दृष्टव्य है । व्यापक राष्ट्रीयता भी राष्ट्र की ओर जनता के निकट संपर्क का द्योतक है ।

अठारहवीं सदी के मध्यकाल से अंग्रेजों ने भारत-विजय का प्रयास शुरू किया और उन्नीसवीं शती के प्रारंभ तक वे भारत के सर्वेसर्वा बन गये । अंग्रेज लोगों के भारत-आगमन से ऐसी नयी परिस्थितियां उत्पन्न हुईं, जिनके फलस्वरूप देश में एक नवीन जागृति हुई । सम्पूर्ण राष्ट्र में एक नव जीवन व नव चेतना का संचार हो गया । इस समय कतिपय सामाजिक और धार्मिक आंदोलन हुए जिन्होंने भारतीय मृतप्राय चेतना को जाग्रत करके उनके जीवन में अभिनव स्फूर्ति पैदा कर दी । बंगाल में राजाराम मोहनराय ने ब्रह्म-समाज आंदोलन चलाया । उत्तर पश्चिमी भारत में स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज का आन्दोलन शुरू किया । सब धर्मों में आपने प्राचीन वैदिक धर्म को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया । भारतीय राष्ट्रीय जागृति के लिए भी आपने महान् कार्य किया । रामकृष्ण परमहंस तथा उनके वरिष्ठ शिष्य विवेकानन्द ने भारतीय सभ्यता की गरिमा की वाणी देश-विदेशों में बुलन्द की । इन आन्दोलनों के प्रभाव से भारत में एक नवीन चेतना का उदय हुआ ।

अंग्रेजों के प्रभाव से भारतीय राजनीति, संस्कृति आदि क्षेत्रों में जो नवजागरण हुआ उसे श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने यों व्यक्त किया है --"आधुनिक युग का प्रारंभ उत्पादन, यातायात और वितरण के नये साधनों के साथ होता है । अंग्रेजों ने भारत की आर्थिक व्यवस्था में अनेक नये परिवर्तन किये । एक ओर तो उन्होंने देशी उपोग-धन्धों को आमूल तहस-नहस किया । किन्तु दूसरी ओर उन्होंने विदेशी पूंजी से नये उपोग धन्धे भी भारत में स्थापित करने प्रारंभ किये । रेल, तार, डाक आदि जो उन्होंने अपनी आर्थिक और राजनीतिक सत्ता कायम करने के लिए खड़े किये, भारत में एक नये जीवन और संस्कृति के दूत भी बनगये । अंग्रेजी शिक्षा का जो अस्त्र उन्होंने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए चलाया था, सुदर्शन चक्र की भांति उलट कर उन्हीं के मर्मस्थल पर लगा । इस नवीन शिक्षा से भारत में नवचेतना का जागरण हुआ । अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से हमारा पश्चिम से संपर्क बढ़ता गया ।"[१]

१- आज का हिन्दी साहित्य : प्रकाशचन्द्र गुप्त

भारतीय नवचेतना के कतिपय कारण थे । अंग्रेज तब तक भारत की प्रमुख शक्ति बन चुके थे । वे क्रांति के अग्रदूत बने । पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्द यहां उल्लेखनीय हैं -- "भारत में ब्रिटिश शासन के चित्रण करते समय एक प्रमुख विरोधाभास उसके हर एक मोड़ में प्रकाशित होता है । अंग्रेज भारत के सर्वशक्तिमान बनकर विश्व की प्रमुख शक्ति इसलिए बन सके कि नवीन वृहदयंत्रमूलक वैज्ञानिक सभ्यता के वे अग्रदूत थे । वे उस नवीन ऐतिहासिक शक्ति के प्रतिनिधि थे जो विश्व में रूपांतर लाने वाले थे और इस प्रकार वे अपने आप से बाजाने की परिवर्तन तथा क्रांति के अग्रदूत एवं प्रतिनिधि बनगये । वे हुल्लमहुल्ला क्रांति रोकने का यत्न करते थे ..... ।"[१]

अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार भी भारतीय नवचेतना का एक कारण बना । यद्यपि कुछ अंग्रेज गवर्नर जनरलों ने अंग्रेजी शिक्षा प्रचार का विरोध किया, लेकिन ऐसे उदार एवं उच्चाशय व्यक्ति भी हुए जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार भारत में शुरू किया । मेकाले ने भारतीय साहित्य, इतिहास तथा दर्शन का ज्ञान न रखते हुए भी उसकी तीव्र आलोचना की जोकि बहुत-से अनजान बादमियों ने सत्य समझ ली । ट्रेवेल्यन नामक विद्वान ने अंग्रेजी

१- "One remarkable contradiction meets us at every turn in considering the record of British rule in India. The British became dominant in India, and the foremost power in the world, because they were the heralds of the new big-machine industrial civilisation. They represented a new historic force which has going to change the world, and were thus, unknown to themselves, the fore-runners and representatives of change and revolution, and yet they deliberately tried to prevent change....."

- The Discovery of India: Jawaharlal Nehru, 1961
Asia publishing house: Page: 330.

भाषा और साहित्य की शिक्षा का विरोध करते हुए कहा था कि यदि उसकी बात न मानी गयी तो सौ वर्ष के भीतर ही हमें भारतवर्ष के राज्य से हाथ धोना पड़ेगा । जन-मत के ऊपर अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव को उसने बहुत कुछ ठीक समझा था । शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो जाने से विद्यार्थियों की मौलिकता क्षीण हुई और उनका बहुत समय एक विदेशी भाषा सीखने में ही नष्ट होने लगा जिससे भारतीय राष्ट्रीय क्षति हुई । ..... यह भी निर्विवाद है कि अंग्रेजी भाषा के पढ़ने के कारण संपूर्ण भारत में एकता का भाव पैदा हुआ और पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक सुधार की गति अधिक तीव्र हो गयी । सरकार को भी सस्ते लेकिन सुयोग्य कर्मचारी मिलने में बड़ी सुविधा हो गयी ।"[१] जवाहरलाल नेहरू जी ने भी अंग्रेजी शिक्षा देने की और अंग्रेज सरकार की विमुखता प्रकट की थी --"अंग्रेजों को राज-काज के लिए अपनी इच्छा के विरुद्ध क्लर्कों के उत्पादन एवं शिक्षण की व्यवस्था करनी पड़ी ।"[२] अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों में गतिशील अभिनव भाव-विचार उत्पन्न कर दिये ।

सन् १००० ई० के लगभग महान् मुस्लिम विद्वान अलबरूनी ने अपना यह मत प्रकट किया था कि हिन्दू लोग पाश्चात्य कला एवं विज्ञान के प्रति अबोध रहे तथा उन्होंने अपने को बाहरी दुनिया से कोसों दूर रखा ।"[३] लेकिन अंग्रेजी संपर्क भारतीयों को बाहरी विश्व के बहुत आसपास लाने में समर्थ हुआ । "सचमुच अंग्रेजी शिक्षा के श्रीगणेश ने उस अवरोध को

१- भारतवर्ष का इतिहास - डा० अवधबिहारी पाण्डेय, पृ० २६०.

२- Even the British Government inspite of its dislike of education was compelled by circumstances to arrange for the training and production of clerks for its growing establishment.

3. The Great Muslim Scholar, Al-Biruni, remarked about 1,000 A.D. that the Hindus kept themselves aloof from the outer world and were ignorant of the arts and sciences of the west.

तोड़ दिया जिसने अब तक भारत को पाश्चात्य देश से जबरदस्ती रोके रखा था ।[१] भारतीय जनता पर अंग्रेजी शिक्षा का व्यापक प्रभाव पड़ा । अंग्रेजी शिक्षा देश के विभिन्न प्रांतों तथा विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच भाषा की एकता स्थापित करने में समर्थ हुई । भिन्न-भिन्न प्रांतों के लोग निकट संपर्क में आ गये और उनके बीच विचारों का आदान-प्रदान शुरू हो गया । यही नहीं पाश्चात्य विचारों से भारतीय परिचय भी प्राप्त कर सके । पाश्चात्य साहित्य, इतिहास, राजनीति आदि के अध्ययन का यह फल हुआ कि राष्ट्रीयता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता समानता, जातीयता आदि के सिद्धांतों से भारतवासी प्रभावित हुए और अपने राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में उन सिद्धांतों के प्रयोग की ओर भी वे प्रयत्नशील हुए । शिक्षा के अतिरिक्त डाक, तार, रेल, सड़क आदि साधनों ने भी भारतीय जनता में एकता की भावना को बहुत प्रोत्साहित किया ।

अंग्रेजी प्रभाव ने एक ओर भारतवासियों में एकता, राष्ट्रीयता तथा स्वदेश प्रेम की भावना को जगाया, तो दूसरी ओर उनमें विदेशी शासन के प्रति आलोचना एवं असंतोष की भावना भी जगा दी । विदेशी शासन की अनेकों बुराइयों की ओर भारतीयों का ध्यान आकर्षित हो गया, और वे समझ गये कि अपने देश के पतन का मूल कारण गुलामी है । आजाद भारत की कल्पना का उन के मस्तिष्क में उदय हुआ । उस ओर भारतवासी प्रयत्नशील भी हो गये । आजादी की ओर उनके प्रयाण का इतिहास ही हमारा राजनीतिक इतिहास है ।

१- The introduction of english education broke the barrier which had hither to effectively shut India from the western world.
British paramountcy and Indian Renaissance.
R.C. Majumdar. Vol. X. Part II Chapter III (XLI) page: 89.

२. राजनीतिक स्थिति

हमारे साहित्य का इतिहास राजनीतिक इतिहास का अपेक्षी रहा है । साहित्य के सर्वांगपूर्ण ज्ञान के लिए राजनीतिक इतिहास से परिचय प्राप्त करना वांछनीय है । सुविधा की दृष्टि से अंग्रेजी प्रभुत्व काल का दो भागों में विभाजन हो सकता है -- स्वातंत्र्य पूर्व काल एवं स्वातंत्र्योत्तर काल ।

सोने की चिड़िया समझ कर भारत में व्यवसाय करने के लिए आये अंग्रेज यहां जम गये, यहां के शासक भी बन बैठे । आंग्ल-संपर्क से भारतीयों में स्वतंत्रता की भावना एवं नवचेतना अंगड़ाई लेने लगी थी । उन्नीसवीं सदी से आधुनिक चेतना का उदय भारतीय जनमानस में हुआ था जिसका विकास बीसवीं सदी में हुआ । सन् १९०० के पूर्व ही कांग्रेस की स्थापना हुई थी, जिसके नेतृत्व में नवचेतना की भावना और तीव्र हो उठी थी । अपनी प्राचीन गौरवमय संस्कृति की महत्ता के प्रति स्वाभिमान की भावना को उद्बुद्ध करने के रूप में राष्ट्रीय चेतना का विकास आरंभ हुआ । सन् १९०५ तक उसने एक सुसंगठित राष्ट्रीय जागरण और आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया तथा सन् १९०५ एवं १९१० के बीच राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष की पहली सुसंगठित लहर समूचे भारतवर्ष में व्याप्त हो गयी । सन् १९०५ में बंग-भंग के विरोध में सारे भारत में रोष की लहरें फैल गयीं और जनता में पहला देश व्यापी राजनीतिक उभार दृष्टिगोचर हुआ । सन् १९०५ को भारतवर्ष के इतिहास का सीमाचिह्न (land-mark) उद्घोषित करते हुए उक्त वर्ष की ऐतिहासिक महत्ता के बारे में सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मजूमदार लिखते हैं --"..... १९०५ ई० से अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों के विद्रोह का प्रारंभ होता है जो अन्ततः १९४७ की स्वतंत्रता प्राप्ति में परिणत हो गया ।"[१]

१- .....the year 1905 marks the beginning of that national struggle by the Indians against the British rule which culminated in the achievement of Indipendence in 1947.
British Paramountcy and Indian Renaissance Part I .
Bharatiya Vidya Bhavans History and Culture of the Indian people. Volume IX. Page: XXI. Dr. R. C. Majumdar.

धीरे-धीरे कांग्रेस के नवयुवक दल विनम्र प्रार्थनाओं की नीति का विरोध करने लगे। यही दल गरम दल कहा जाता है। बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय आदि इस दल के प्रमुख व्यक्ति हैं। १९०६ ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस ने खुल्लमखुल्ला यह घोषणा की कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य प्राप्त करना है। "इतिहास में पहली बार भारत की आजादी की मांग दुनियां की राजनीति का एक प्रमुख प्रश्न बन गयी और भारत में राजनीतिक आंदोलन में पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने के लिए दृढ़ संघर्ष के बीज पड़ गये, जो आगे चल कर आम जनता से बल प्राप्त कर अंकुरित हुए।"[1]

राष्ट्रव्यापी संघर्ष की दूसरी व्यापक लहर सन् १९१९ और १९२९ के बीच आयी। सन् १९१४ के प्रथम महायुद्ध में स्वाधीनता प्राप्त करने के उद्देश्य से गांधीजी तथा अन्य भारतीय नेताओं ने अपना सहयोग दिया। यह आशा निराशा में बदल गयी, प्राप्त हुआ रौलट ऐक्ट और उसके विरोध के परिणाम स्वरूप जालियांवाला बाग का हत्याकांड। अंग्रेज सरकार ने देश में फूट डालने के लिए हिन्दू-मुस्लिम, छूत-अछूत के झगड़े खड़े किये। भारतीय जनता और नेताओं में अंग्रेजी सरकार के प्रति रोष की एक जबरदस्त लहर उत्पन्न हो रही थी। सारा देश अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। प्रस्तुत समय की सरकारी रिपोर्ट में बड़ी हैरानी और घबराहट व्यक्त की गयी। "इस आम हलचल में एक खास बात देखी गयी कि हिन्दुओं और मुसलमानों में अभूतपूर्व भाई-चारा कायम हो गया है। ...... इस आम हलचल के वक्त नीचे के वर्ग भी एक बार अपने भेदभाव भूल गये।"[2]

इस समय तक देश में समाजवादी और मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव जड़ पकड़े हुए था और कम्युनिस्ट-संगठन बनाने के सचेतन प्रयास आरंभ हो गये थे, जिसने मजदूरों के संघर्षशील संगठनों को राष्ट्रीय संघर्ष के अनिवार्य अंग की भूमिका प्रदान कर दी थी। बढ़ते हुए जन-आंदोलन के परिणाम स्वरूप सन् १९३५ में प्रांतों में कांग्रेसी सरकारों की

१- भारत : वर्तमान और भावी - रजनी पामदत्त, पृ० १४०.

२- वही, पृ० १४६.

स्थापना हुई । फिर सन् १९३९ में दूसरा महायुद्ध छिड़ने पर कांग्रेस मंत्रिमंडल ने त्यागपत्र दे दिया ।

राष्ट्रीय आंदोलन की अन्तिम लहर १९४२ से १९४५ तक रही । इस काल में "अंग्रेजों, भारत-छोड़ो" की घोषणा ने सारे देश में एक क्रांतिकारी लहर उत्पन्न कर दी । द्वितीय महायुद्ध में फासिस्ट शक्तियों की पराजय तथा जनवादी शक्तियों की विजय हुई । यूरोप के अनेक देशों में समाजवादी सरकारों की स्थापना हुई । राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय दबाव ने अंग्रेजी सरकार को भारत छोड़ने जबरदस्त किया । १९४६ के चुनावों, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की विषमता तथा भारतीय नेताओं से विचार-विनिमय ने मजदूर सरकार को यह कहने पर जबरदस्त किया कि वह भारत छोड़ने के लिए तैयार है । देश का पाकिस्तान, हिन्दुस्तान विभाजन करके आपसी फूट का बीज भी बोया गया । उनकी नीति भी "फूट डालो और राज्य करो"[१] थी । आखिर सन् १९४७ में अंग्रेजों ने भारत का शासन भार उसके अधिकारी कांग्रेस को सौंप दिया । यों वर्षों की गुलामी से भारतमाता मुक्त हो गयी ।

भारतवर्ष के इतिहास में २५ अगस्त, १९४७ एक अत्यंत महत्वपूर्ण तिथि है । स्वतंत्रता प्राप्ति हमारे राजनीतिक इतिहास का नवीन अध्याय है । यहां स्वातंत्र्योत्तर कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थितियां द्रष्टव्य हैं।

देश-विभाजन के पूर्व और पश्चात् दिल्ली, पंजाब, बंगाल, बिहार तथा उत्तर-प्रदेश में कई सांप्रदायिक दंगे हुए । स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले ही सांप्रदायिकता की आग सुलग रही थी । देश-विभाजन की घोषणा के कुछ दिनों बाद सीमा कमीशन के निर्णय की घोषणा से वह प्रचण्ड रूप में प्रज्ज्वलित हो उठी । अंग्रेजों ने जानबूझ कर इसके लिए भूमि तैयार की थी । महाविनाश का उपक्रम हुआ । बर्बरता सर्वत्र खुलकर नाचने लगी ।

१- फूट डालो और राज्य करो -

पैशाचिकता अट्टहास करने लगी । मनुष्यता ने दम तोड़ दी । सब कहीं सर्वनाश का भीषण ताण्डव नर्तन शुरू हुआ । "समस्या के स्वरूप और उसके विस्तार का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है । सितंबर १९४७ के लगभग प्रथम तीन सप्ताह के अन्दर (दंगों की भीषणता देखकर १६ सितंबर को केन्द्रीय सरकार ने पंजाब और सीमाप्रांत के सम्बन्ध में आबादी की अदला-बदली का सिद्धांत स्वीकार कर लिया था) निष्क्रमण में पहली तीव्रता के बाद पूर्वी पंजाब की सीमा में लगभग दस लाख हिन्दू पश्चिमी पाकिस्तान में आ चुके थे । लाखों की संख्या में हिन्दू बैलगाड़ियों पर, पैदल और रेलों द्वारा पाकिस्तान से भारत आ रहे थे ।"[१] गान्धीजी तथा अन्य नेताओं के अनवरत परिश्रम से पुनः शांति स्थापित हो रही थी । महात्मा गान्धीजी ने दंगों को शांत करने के लिए अंतिम बार बिहार का दौरा किया । इससे साम्प्रदायिकता की आग बहुत कुछ बुझ गयी । लेकिन एक वर्ग के लोगों को गान्धीजी की नीति अच्छी नहीं लगी । अतएव उनकी हत्या का षड्यंत्र रचा गया और ३० जनवरी १९४८ को नाथूराम विनायक गोडसे के हाथों वे मारे गये । श्री राजकुमार के शब्दों में --"राष्ट्रपिता के उत्सर्ग ने साम्प्रदायिकता के प्रेत को दफन कर दिया । उनके रक्त ने राष्ट्रीयता की धंसती हुई नींव को सीमेन्ट बनकर सशक्त कर दिया । उनके निर्वाण के अवसर पर भारत में एकता की जो अद्भुत लहर दिखाई दी थी, वह अपूर्व थी । बापू गये किन्तु भारत को क्या गये ।"[२]

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के देहांत के उपरान्त जवाहरलाल नेहरूजी कांग्रेस पार्टी के संचालक सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ शासनचक्र चलाने लगे । नेहरूजी ने अपने आदर्शों के अनुसार अपनी पुरी में शासनचक्र को संचालित किया । मेक्स एडवार्डस के शब्दों में --"उनका (नेहरूजी का) दृष्टिकोण प्रमुखतया प्रगतिवादी तथा पाश्चात्य

१- भारत का राजनीतिक इतिहास (१९४७-१९६०) - राजकुमार, पृ० ३६४.

२- वही, पृ० ३७०.

ढंग का रहा, पर वे चिंतन में शक्तियुक्त भारतीय भी रहे । आर्थिक सुव्यवस्था ही उनकी आभ्यंतर नीति में प्रमुख रही ।[१]

सन् १९५० में प्लानिंग कमीशन का प्रारंभ हुआ । कृषि को प्रमुख स्थान देते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारंभ हुई (१९५१ से १९५६ तक) । दूसरी पंचवर्षीय योजना ने भी भारतीय जनजीवन को सुसंपन्न बनाने में भारी यत्न किया (१९५६ से १९६१ तक) ।

भारत के स्वतंत्र होने के उपरान्त प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने वैदेशिक विभाग अपने अधीन रखा तथा अन्तराष्ट्रीय संपर्क बढ़ाने का अधिकाधिक प्रयास किया । सन् १९६२ में चीनी आक्रमण तक भारतीय विदेशी नीति सुदृढ़ रही । अक्तूबर, ६२ में भारतीय उत्तर-पूर्वी सीमाप्रांतों में चीनियों का आक्रमण हुआ । नेहरूजी की प्रखर राजनीतिक प्रतिभा के कारण भारत की जीत हुई ।

२७ मई, १९६४ ई० को महान् नेता पण्डित नेहरू की मृत्यु हुई । देश के प्रमुख नेताओं की धारणा यही रही कि उनकी मृत्यु से जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति हो ही नहीं सकती । लेकिन भारत के सौभाग्य से उसे लालबहादुर शास्त्री सा एक महान् नेता मिल गया । सन् १९६४ में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया । यद्यपि यह युद्ध अधिक काल तक जारी नहीं रहा, तो भी इसके कारण देशों के आपसी सम्बन्धों में उलझन हुई । भारत पाक का यह युद्ध तब समाप्त हुआ जब जनवरी, ६६ को रूस के ताशकन्द में दोनों राज्यों के प्रधानमंत्रियों के बीच सन्धि हुई । इस समझौते में हस्ताक्षर

१- "His views were essentially progressive and western in form, but he was also stronly Indian in feeling. The principal direction of his domestic policies was towards economic moderation."

A history of India: Michael Edwardes, first Nelmenter edition Dec.'67. Page: 315.

देने के कुछ ही घंटों बाद प्रधानमंत्री शास्त्री की हृदय रोग के कारण चल बसे ।

शास्त्रीजी के बाद नेहरूजी की सुपुत्री श्रीमती इन्दिरागान्धी प्रधानमंत्री बन गयी, जो फरवरी १९६७ के चुनाव के बाद प्रधानमंत्री पद पर पुन: प्रतिष्ठित हुई । १९७० तक भारतीय राजनीतिक इतिहास में कई परिवर्तन हुए जैसे कांग्रेस पार्टी का विभाजन, बैंकों का देशीयकरण, राजनीति के प्रति युवक वर्ग की सक्रियता आदि ।

३. सांस्कृतिक स्थिति

अंग्रेजों और भारतीयों के सम्पर्क का प्रभाव भारतीय संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था पर भी पड़ा । शिक्षित जनता रूप-रंग में भारतीय होते हुए भी अपने विचारों व आचारों में अंग्रेजों जैसे हो गये और उनकी भारतीय संस्कृति से विद्वेष होने लगी । जवाहरलाल नेहरूजी के शब्दों में --`आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता बिना किसी शोरगुल के धीरे-धीरे इस देश में प्रविष्ट हो गयी । नये भावों और विचारों ने हम पर हमला किया और हमारे बुद्धिजीवी अंग्रेज बुद्धिजीवियों कीतरह सोचने की आदत डालने लगे । यह मानसिक आन्दोलन, बाहर की ओर वातायन खोलने का यह भाव अपने ढंग का अच्छा रहा क्योंकि इससे हम आधुनिक जगत को थोड़ा बहुत समझने लगे । मगर इससे एक दोष भी निकला कि हमारे बुद्धिजीवी जनता से विच्छिन्न हो गये । क्योंकि जनता विचारों की इस नई लहर से अप्रभावित थी ।'[१]

अंग्रेजी प्रभाव से भारतीय जनमानस पर हमारी संस्कृति के प्रति जो विद्वेष पैदा हो गयी, उसे दूर करने के हेतु अनेक सांस्कृतिक संस्थाओं का जन्म हुआ । इस ओर प्रथम प्रयास राजाराम मोहनराय की ओर से हुआ । सन् १८३० में `ब्रह्मसमाज` स्थापित हुआ । उसने भगवान की सर्वव्यापकता पर जोर दिया और एकमात्र ईश्वर की भक्ति की शिक्षा दी । मूर्ति पूजा, अगणित देवी-देवताओं की पूजा का खण्डन हुआ । इस धर्म का

१- संस्कृति के चार अध्याय - भूमिका - जवाहरलाल नेहरू.

मूल आधार उपनिषद् एवं बौद्ध धर्म था, लेकिन ईसाइयों व यहूदियों का भी इस पर कुछ प्रभाव पड़ा था । रायजी ने इस धर्म से उन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया था जिन पर ईसाई इशारा करके शिक्षित हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन कर लेते थे । हिन्दू समाज को उन्नत बनाने के लिए उन्होंने प्रचलित कुप्रथाओं को दूर करने का यत्न किया और सती प्रथा एवं जाति व्यवस्था का विरोध तथा विधवा विवाह एवं शिक्षा प्रचार का समर्थन किया । बाद में ब्रह्मसमाज के दो भाग हो गये । एक दल तो उसे हिन्दू-धर्म के निकट रखना चाहता था और दूसरा अधिक प्रगतिशील हो गया जिसके कारण लोग इसे ईसाई धर्म की एक शाखा बताकर इसका विरोध करने लगे । 'केशवचन्द्र सेन ने तो ब्रह्मसमाज को ईसाई-धर्म की ओर झुका दिया था, परन्तु महर्षि (देवेन्द्रनाथ ठाकुर) ने उसे भारतीय संस्कृति के ही अनुरूप ढाला था ।'[१] ब्रह्मसमाज का प्रचार तब इतना था कि नवयुग की चिन्तन-धारा पर इसके धर्म सिद्धांतों का गहरा प्रभाव पड़ गया ।

सन् १८७३ में स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३) ने 'आर्यसमाज' नामक धार्मिक संस्था की स्थापना की । वेदों की शिक्षा के आधार पर भारतीय धर्म एवं समाज के दोषों को हटाकर समाज के पुनरुद्धरण करने का आपने सफल प्रयत्न किया। छुआछूत, जाति-पाँति, मूर्तिपूजा, बाल-विवाह आदि सामाजिक रूढ़ियों व अन्धविश्वासों का आपने घोर विरोध किया । यही नहीं आपने शिक्षा के प्रचार का प्रयत्न किया और अन्तर्जातीय भोज व विवाह अहिन्दुओं की शुद्धि एवं विधवा विवाह का भी आपने समर्थन किया । आर्यसमाज ने सामाजिक नवनिर्माण का उत्साह जगा दिया और जातीयता की चेतना भी प्रस्फुटित की । इस सामाजिक चेतना का ही स्वर तत्कालीन काव्यधारा में गूंज उठता है ।

इनके अतिरिक्त प्रार्थना-समाज (१८६७), रामकृष्ण मिशन (१८९७), थियोसफिकल सोसाइटी (१८७५) जैसी संस्थाओं ने भी भारतीयों में शिक्षा और धर्म-

---

१- हिन्दी कविता में युगांतर - सुधीन्द्र, पृ० ७.

प्रचार द्वारा सहयोग एवं स्नेह बढ़ाकर उन्हें सांस्कृतिक एकसूत्र में बांधने का प्रयत्न किया है। रामकृष्ण परमहंस के शिष्य विवेकानन्द ने (१८६३-१९०२) भारतीय संस्कृति की दार्शनिक व्याख्यायें प्रस्तुत करने का प्रयास किया। देश-विदेशों में भी आपने भारतीय वेदान्त बताया। उनकी अद्वैतवाद सम्बन्धी व्याख्यायें खूब प्रसारित हुई। अपने ही गुरु के नाम पर आपने `रामकृष्ण मिशन` का संगठन किया और दार्शनिक धार्मिक धरातल पर भी जनसेवा का कार्य आपने किया। सन् १८९३ में स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो की विश्वधर्म सभा में भारत की विजयपताका फहरायी। उसी वर्ष अरविन्द ने बड़ोदा सरकार की सेवा में प्रवेश किया।

उन्नीसवीं शती के उपरान्त बीसवीं शती के सांस्कृतिक निर्माता के रूप में महात्मा गान्धीजी उपस्थित हैं। राजनैतिक क्षेत्र के द्वारा आपका आगमन तो हुआ था, किन्तु भारतीय संस्कृति के हिमायती के रूप में आपका पथ-प्रदर्शन देश को अत्यंत लाभदायक हुआ। भारतीय संस्कृति के अमर तत्व अहिंसा को कार्यक्षेत्र में लाकर उसे कार्यान्वित करने का सफल प्रयास आपने किया। आपके सत्याग्रह एवं अहिंसा सिद्धांत की चिन्तनधारा भारतीय जन जीवन में जल्दी व्याप्त हो गयी। राजाराम मोहनराय से लेकर महात्मा गांधी तक के महान् विभूतियां विभिन्न सांस्कृतिक चिन्तनधाराओं के प्रवर्तक एवं प्रचारक थे, जिनके प्रभाव में समूचे भारतवासी पड़ गये। सचमुच राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गान्धी सब के सब भारतीय सांस्कृतिक नवचेतना के अमर प्रतीक हैं। "भारतीय पुनरुत्थान उसके महान् वटवृक्ष की ही भांति है, जिसके अगणित अंकुर फूट निकलते हैं, जो पृथक से दीख पड़ते हैं, परन्तु अन्ततः वे सब एक ही जड़ के हैं।"[१]

१- "The Renaissance of India like her great Banyan tree, threw numerous shoots, which might appear as seperate, but had all a common root."

- British Paramountcy and Indian Renaissance: Vol. X Part II Page 96.

स्वतंत्र भारत भी अपनी गरिमामयी संस्कृति के पालन-पोषण हित सर्वदा सजग रहता है। आधुनिक कविगण एवं साहित्यकारों ने भी इस महत्वपूर्ण संस्कृति की उद्घोषणा के महान् कार्य का भार अपने कन्धों पर सहर्ष ले लिया है। बरबस भारत-वासी अपनी पहली संस्कृति के पोषक ही रहेंगे, क्योंकि इन को वही परंपरा विरासत के रूप में उपलब्ध हुई है।

४. धार्मिक स्थिति

भारत में अंग्रेजों का राजनैतिक प्रभुत्व जम गया तो भारतवासियों पर धार्मिक प्रभुत्व जमाने का भी उन्होंने प्रयत्न शुरू किया। ईसाई धर्म प्रचारकों ने यहां अपने केन्द्र स्थापित कर अपने साहित्य का विभिन्न भारतीय भाषाओं में रूपान्तर करके प्रचार का कार्य प्रारंभ किया। लेकिन इस समय ऐसी परिस्थितियां पैदा हुई जिनके फलस्वरूप एक धार्मिक नवचेतना यहां प्रारंभ हुई। इस समय के धार्मिक-सामाजिक आन्दोलनों ने जनता में नवीन धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक नवचेतना की लहरें पैदा की। राजाराम मोहनराय ने बंगाल में ब्रह्मसमाज तथा उत्तर-पश्चिमी भारत में स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना करके धार्मिक आन्दोलन चलाया। स्वामी जी ने उद्घोषित किया कि प्राचीन वैदिक धर्म ही सब धर्मों से श्रेष्ठ है। रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानन्द ने भी प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं गरिमामयी संस्कृति की महत्ता बतायी। इन धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप देश में एक धार्मिक नवजागृति पैदा हुई।

अंग्रेजों ने जहां भारतीयों में राष्ट्रीयता, एकता व स्वदेश-प्रेम की भावना जगायी, वहां विदेशी शासन के प्रति असंतोष की भावना भी उसने जगायी। सन् १८८७ की क्रांति के दब जाने पर भारत के कुछ नवयुवकों ने क्रांतिकारी बनकर हिंसात्मक कार्य द्वारा सरकार को बदलने का निश्चय किया। इस मनोवृत्ति के लोगों ने भारतीय क्रांति-कारी दल की स्थापना की। बालगंगाधर तिलक ने महाराष्ट्र में क्रांति के प्रचार का कार्य शुरू किया। अपने वीरनेता के रूप में आपने शिवाजी को चुना और शिवाजी उत्सव चलाया। इन सबके पीछे हिन्दू नवोत्थान का हाथ रहा है। "हिन्दू नवोत्थान के प्रभाव में जो

प्रस्थान हुए हो गया उसने एक कट्टर हिन्दू राष्ट्रीयता का रूप अपना लिया । बालगंगाधर तिलक के द्वारा यह विशेषतया स्पष्ट किया गया था । मराठों के जोश को आपने पुनरुज्जीवित किया और एक कट्टर हिन्दू के जैसे धार्मिक मामलों पर हस्तक्षेप न करने के सरकार के विचार को जानकर, धार्मिक पुनरुत्थान के पीछे राजनीतिक आन्दोलन का स्वांग आपने भर लिया । - - - - महाराष्ट्र के नेता वीर शिवाजी को आपने एक असांप्रदायिक नेता मान लिया । - - - इस प्रकार शिवाजी को चुनने का कारण तिलक ने सन् १९०७ में कलकत्ते की एक सभा के भाषण में व्यक्त किया ।"[१]

भारत में कई धर्मों के लोग मिलते-जुलते रहते हैं । सन् १९४६ के लगभग साम्प्रदायिक आन्दोलन कई हुए जो बहुत हानिकारक सिद्ध हुए । अनेक स्थानों पर भीषण दंगे हुए एवं लाखों करोड़ों की संख्या में लोगों की मृत्यु हुई तथा करोड़ों की संपत्ति नष्ट हुई । अन्त में भारत का भी विभाजन हुआ - हिन्दुस्तान और पाकिस्तान । भारत के

१- The movement now began under the influence of the Hindu revival to take on the appearence of a strictly Hindu Nationalism. This was particularly expressed in the work of B.G. Tilak. Tilak revived the spirit of the Marathas and as an orthodox Hindu conceived the idea of disguising a political movement behind a religious revival, knowing the unwillingness of the Government to interfere in matters of religions. XXX Tilak now produced a secular hero in the founder of the Maratha Empire, Sivaji. He didnot see this as an anti-Muslim gesture though the European press attended to diminish it as such. At a meeting at Calcutta in 1907, Tilak explained his reasons for chosing Sivaji."

A History of India: Michael Edwardes: Page: 295.

महात्मा नेता गान्धीजी ने हिन्दू मुस्लिम मैत्री की स्थापना करने के लिए कठिन यत्न किया ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त गान्धीजी भारत में रामराज्य की स्थापना चाहते थे । इसमें वर्ग, वर्ण, जाति, लिंग, भाषा या संप्रदाय के आधार पर कोई भेदभाव न करके सबको अपनी-अपनी रुचि एवं सामर्थ्य के अनुसार आत्मविकास की पूर्ण सुविधा मिलनी चाहिए -- यही रामराज्य से आपका तात्पर्य था । स्वतंत्र भारत की धार्मिक दृष्टि धर्म-निरपेक्षता की ओर ही दृढ़ रहती है -- यह बात तो श्लाघनीय ही है । इस ओर महर्षि अरविन्द जैसे धार्मिक नेताओं का भी बड़ा योगदान है । आपका "डिवाइन लाइफ" आपके धार्मिक विचारों का कोष है जो इस दिशा का एक अमर ग्रंथ है । भारत भर में तथा विदेशों में उनके "डिवाइन लाइफ थीयरी" की बड़ी मान्यता है । भूदान यज्ञ के उपज्ञाता एवं सर्वोदय के नेता गान्धीजी के अनुचर विनोबा भावे का प्रयत्न भी सराहनीय है । इन आत्मीय नेताओं की प्रबुद्ध चेतना के आलोक में भारतवासी निरंतर धार्मिक एकता की उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं ।

५. सामाजिक स्थिति

अंग्रेजी संपर्क का प्रभाव भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर भी पड़ा । हिन्दू समाज एवं स्त्रियों की स्थिति पहले से अधिक सुधर गयी । धर्म-सुधारकों की शिक्षा, राजनीतिक आन्दोलन और समाचार पत्रों के प्रभाव से प्राय: सभी वर्गों में ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हुए जिन्होंने अपने वर्ग एवं समाज के सुधार की ओर ध्यान दिया । पहले से ही जाति-पाँति तथा छुआछूत भारतीय समाज का कलंक था । बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भी अछूतों की स्थिति अधिक सुधरी हुई नहीं थी । आर्यसमाज के प्रचार ने उन में से कुछ को ऊपर उठाने का अवसर प्रदान किया । महात्मागान्धी ने भी इस ओर बड़ा परिश्रम किया । उन्होंने अछूतों का नाम बदल कर 'हरिजन' रख दिया तथा उनकी शिक्षा के लिए आवश्यक योजनाएं तैयार कीं । सरकार की ओर से भी हरिजनों की शिक्षा तथा उनकी नौकरी के लिए विशेष प्रबन्ध हुआ ।

समाज में स्त्रियों की दशा बड़ी दयनीय थी । बालहत्या एवं सती प्रथा का प्रचलन था । सन् १८२९ में सती प्रथा के निषेध के द्वारा विधवा नारियों को जीवित रहने का अधिकार मिला । उसके अनन्तर विधवा स्त्रियों की दशा को सुधारने का प्रयास हुआ । ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज और शिक्षित वर्ग ने विधवा विवाह का समर्थन किया । पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने शास्त्रों का उद्धरण देते हुए इसका समर्थन किया कि हिन्दू समाज में विधवा विवाह का प्रचलन था । उनके श्रम के फलस्वरूप सन् १८५६ में सरकार ने विधवा-विवाह को अनुमति देते हुए कानून बनाया । आर्यसमाज एवं विभिन्न विधवा-आश्रमों ने विधवाओं को शिक्षित और आत्मनिर्भर बनाने का काम किया और उनके विवाह भी करा दिये । सन् १९३७ में सरकार ने एक कानून बना कर विधवाओं को परिवार की सम्पत्ति में अधिकार भी प्रदान किया । सन् १९३० में सरकार ने बाल-विवाह को रोकने के लिए एक कानून बनाया जो शारदा ऐक्ट नाम से मशहूर है । स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करने के लिए सरकारी एवं गैरसरकारी संस्थायें स्थापित हुईं जो स्त्रियों की स्थिति सुधारने की कोशिश कर रही हैं । इन कारणों से स्त्रियों की दशा काफी सुधर गयी है ।

पहले समाज में स्त्रियों की दशा बड़ी दयनीय थी । उनको शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी । मिस्टर आडम (Adam) के रिपोर्ट का उद्धरण देते हुए मजूमदार लिखते हैं कि "इस काल में व्यावहारिक रूप से स्त्री शिक्षा अज्ञात ही रही तथा इस के लिए कोई सरकारी संस्था ही नहीं रही । यहां तक कि उनके बीच यह अंधविश्वास भी प्रचलित रहा कि जो लड़की पढ़ने-लिखने का कार्य करेगी वह शादी के बाद अविलम्ब ही विधवा बन जायेगी ।[१] लेकिन धीरे-धीरे इस धारणा में परिवर्तन होती गयी । राज्य के

१- "As regards female education it was practically unknown and there was no public institution for this purpose. There was a superstitions idea that a girl taught to read and write would soon after marriage become a widow."

(Mr. Adam's report.) British paramountcy and Indian Renaissance Volume X, Part II, page: 19

के विभिन्न भागों से समाज सुधारकों व अन्य संस्थाओं की ओर से इस ओर प्रयत्न शुरू हुआ । `ब्रह्मसमाज` के प्रवर्तक राजाराम मोहनराय जैसे प्रबल समर्थकों ने स्त्री शिक्षा के लिए खूब प्रोत्साहन दिया । इस क्षेत्र में ब्रह्मसमाज का कार्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं । ब्रह्मसमाज के अनेक प्रमुख व्यक्तियों ने स्त्रियों की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति को ध्यान में रखकर समय-समय पर अनेक पत्रिकायें निकालीं - यथा -- (अ) `बामाबोधिनी` जिसका प्रारंभ सन् १८६३ में हुआ तथा जिसके संपादक रहे उमेशचन्द्र दत्त, (आ) `अबला-बान्धवा` जो द्वारकानाथ गांगुले के संपादन में सन् १८६६ के लगभग प्रकाश में आयी, (इ) `महिला` जिसके संपादक रहे गिरीशचन्द्र सेन, (ई) `अन्तपुर` जो शशिपाद बनर्जी के संपादकत्व में निकली, (उ) `भारती` पत्रिका जिसे द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर ने शुरू किया तथा बहुकाल तक जिसका संपादन किया उनकी प्रतिभाशाली बहन स्वर्णकुमारी घोसल तथा उनकी सुपुत्रियों ने,(ऊ) `भारतमहिला` , (ऋ) कुमुदिनी और वासन्ती मित्रा नामक दो स्नातक बहनों की ओर से संपादित `सुप्रभात` ।"[१]

आर्यसमाज ने भी महाकन्याविद्यालय (पंजाब के जालंधर में) जैसी महती संस्थाओं के जरिए स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया । प्रार्थना समाज तथा डक्कान एजुकेशन सोसाइटी की ओर से भी इस दिशा में प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । धीरे-धीरे सरकार की ओर से सहायधन लेकर स्वदेशी संचालकों की ओर से देश भर में पाठशालाएं शुरू हुईं । स्त्री-शिक्षा प्रगति के पथ पर अग्रसर हुई ।`सन् १९००-१९०२ तक इस क्षेत्र में इतनी प्रगति प्राप्त हुई कि देश भर में बारह महिला कलालय कार्य करने लगीं -- मद्रास में तीन, बंगाल में तीन तथा संयुक्त प्रांत में छः ।"[२] यद्यपि देश भर में स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में खूब प्रोत्साहन

१- British paramountcy and Indian Renaissance. Vol. X Part II. Page: 65 - 66.

2. In 1901-02 there were 12 female colleges - three in Madras three in Bengal and six in the united provinces. - Above. page: 67.

हुआ लेकिन शिक्षित स्त्रियाँ समाज की कुल स्त्रियों की बहुत ही कम प्रतिशत की रहीं। इसके उपरान्त सरकारी एवं गैरसरकारी असंख्य संस्थाओं का शिलान्यास हुआ तथा भारत में स्त्री-शिक्षा काफी बढ़ गयी। स्त्री-शिक्षा काफी बढ़ गयी तो उसका सर्वत्र आदर होने लगा। धीरे-धीरे उसे मत देने का अधिकार भी प्राप्त हुआ। स्वतंत्र भारत की नारी पुरुषों के समान अधिकारों की भोग्या है। उसका सर्वांशतः विकास हुआ है। स्वतंत्र भारत की सरकार की ओर से स्त्री के सभी अधिकारों की सुरक्षा के लिए प्रयत्न हो रहा है। सचमुच स्वतंत्र भारत में नारी को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त है तथा वह अधिकार के सभी स्तरों पर निपुणतापूर्वक काम करती हुई विराजमान है। भारत के प्रधानमंत्री के महत्वपूर्ण पद को भी सुशोभित करने की योग्यता एवं सामर्थ्य आज उसने अर्जित की है।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रारंभ से ही भारतीय समाज में नवचेतना का उदय दर्शित हुआ। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतवासी उनके ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं तथा आचार-विचारों से अवगत हुए। अंग्रेजी शिक्षा एवं अंग्रेजों के सम्पर्क का इतना प्रभाव भारतीयों पर पड़ा कि हेबर (Heber) ने कहा है --"आजकल तो भारतीयों में सर्वत्र अंग्रेजों की नकल करने का प्रत्यक्ष एवं वर्धमान रुझान दिखाई पड़ता है।"[१] ऐसी एक धारणा है कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रारंभ करने वाले अंग्रेज शासक हैं। लेकिन यह धारणा मिथ्या है। राजा-राम मोहनराय जैसे उद्बुद्ध भारतीय जननेताओं तथा अन्य गैरसरकारी संस्थाओं का इस ओर सराहनीय प्रयत्न रहा है।[२] उद्बुद्ध भारतीयों की प्रेरणा से प्रेरित अंग्रेज गवर्नर

१- "...at present there is an obvious and increasing disposition" in the part of Indians "to imitate the English in every thing" - - Heber From - British paramountcy and and Indian renaissance, Vol. X Part II. Page: 27

2. There is a general impression in India that the English education was introduced by the British rulers....... English education was promoted by non-Government agencies......

- British paramountcy and Indian Renaissance. Vol. X. Part II Page: 34.

जनरलों -- विशेषकर बैण्टिङ्क, डलहौसी, कर्जन -- ने शिक्षा-सुधार की ओर काफी ध्यान दिया ।

बहुत समय तक इतिहासकारों की यही सामान्य धारणा रही कि मैकाले के `मिनिट` (minute) (सभा कार्य का संक्षिप्त विवरण) ही भारत में शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा की शुरुआत करने में निर्णायक सिद्ध हुआ है । लेकिन इस के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि मैकाले के भारत-आगमन के बहुत पहले ही तैयार हो चुकी थी ।[१] विलियम बैण्टिङ्क ने इस ओर महत्वपूर्ण प्रयास किया । बैण्टिङ्क अंग्रेजी भाषा की महत्ता के पारखी थे जिनका विश्वास था कि `अंग्रेजी भाषा सभी प्रकार की प्रगतियों की कुंजी है ।`[२] तत्कालीन भारतीय गतिविधियों व हिन्दुओं के मनोभावों को परख कर ऐन मौके पर आपने भारत में अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का उपक्रम किया । मैकाले ने भी भारत में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने का समर्थन किया । लेकिन उन का लक्ष्य `ऐसी एक श्रेणी का निर्माण था जो खून व रंग में भारतीय हों और रुचि, विचार, आदर्श एवं बुद्धि में अंग्रेज रहे ।`[३] भारत के अंग्रेजी गवर्नर जनरलों व भारतीय उद्बुद्ध व्यक्तियों के परिश्रम से जिस अंग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात भारतवर्ष में हुआ, वह शनैः-शनैः कई सुधारों को पार करता हुआ प्रगति के पथ पर बढ़ आया । कई विश्वविद्यालय देश भर में स्थापित हो गये जहां पढ़ कर असंख्य भारतीय उद्बुद्ध निकले । स्वदेशी भाषाओं व साहित्यों (vernacular) का भी बराबर विकास होता गया । बीसवीं शताब्दी में शिक्षा की प्रगति में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई ।

१- Bharatiya Vidya Bhavan's History and Culture of the Indian people Volume X part II, page: 45.

2. He wrote of the British language as the key to all improvements. Same book: page: 45.

3. His object was to form a class of persons, Indian in blood and in colour, but English in tastes, in opinions and in morals and in intellect"; Same book: page: 46.

स्वातंत्र्योत्तर भारत में तो भारतीय भाषाओं व साहित्य के विकास पर अधिक जोर दिया जा रहा है। स्वतंत्र भारत की सरकार तो शिक्षा-सुधार के लिए सरतक परिश्रम कर रही है। शिक्षा-सुधार की दिशा पर सरकार की ओर से अनेकों महत्वपूर्ण प्रयास एवं प्रयोग हो रहे हैं तथा सुधार, विकास और संशोधन का कार्य भी जारी है। नये संविधान के अनुसार शिक्षा का प्रबन्ध मुख्यत: राज्यों का उपयोग हो गया है। संघीय सरकार की ओर से शिक्षा-सुधार के कई कार्य हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा सुधार के लिए अनुसंधान केन्द्र खोला गया और सन् १९५७ में अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा समिति आयोजित हुई। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा सुधार के लिए १९५५ में अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा समिति स्थापित हुई। विश्वविद्यालयों में शिक्षा के सुधार के लिए सन् १९४८ में सरकार की ओर से राधाकृष्णन कमीशन की स्थापना हुई और उसकी सिफारिशों के मुताबिक १९५३ में एक विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग की स्थापना हुई। क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के लिए ही सरकार ने काम किया। साहित्य के प्रकाशन के लिए पुरस्कारों तथा आर्थिक सहायताओं की योजना हुई। साहित्य एवं कला अकादमियों की स्थापना हुई है जहां साहित्य एवं कलाओं के प्रोत्साहन के जरिए संस्कृति की जागृति का कार्य हो रहा है। साहित्य एवं कलाओं को प्रोत्साहन देने के साथ ही साथ वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक प्रगति के लिए भी सरकार की ओर श्रम हो रहा है। वैज्ञानिक, व्यावसायिक तथा औद्योगिक प्रगति हेतु अनेकों अनुसंधानात्मक संस्थायें स्थापित हो गयी हैं। प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए विदेशों में जाकर ज्ञानसंचय करने के लिए छात्रवृत्तियों का आयोजन है। इस प्रकार देश भर में शिक्षा की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए सफल प्रयास हो रहा है।

जिस प्रकार आधुनिक युग में सामाजिक उन्नति हुई, उसी प्रकार जन-साधारण की आर्थिक दशा सुधारने का परिश्रम भी हुआ। अंग्रेजों के शासन काल में भारतवर्ष ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के हाथ की कठपुतली रहा। उनके समय भारतवर्ष का घोर आर्थिक शोषण हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का हृदय इस आर्थिक शोषण के विरुद्ध फूट निकला था —

"अंग्रेज राज सुखसाज सजे सब भारी ।
पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी ॥"

सचमुच राष्ट्रीय जीवन से आर्थिक दशा का सीधा सम्बन्ध है ।

भारत तो एक कृषि प्रधान देश है । भारत के अधिकांश लोग भी गाँवों में रहने वाले किसान हैं । अंग्रेजों की कर-नीति एवं जमीन्दारी प्रथा ने भारतीय कृषक का खून चूस लिया । उनकी स्थिति बड़ी दयनीय थी । किसानों के शोषण-पीड़न के विरुद्ध चम्पारन और खेड़ा के किसान आन्दोलन हुए । महात्मा गान्धीजी ने भी किसानों की हालत सुधारने के लिए यत्न किया । श्रमदेवता की उपासना करने वाले कृषकों को वे देश की रीढ़ की हड्डी समझते थे और उनकी स्थिति सुधारने में निरंतर प्रयत्नशील रहे । स्वतंत्र भारत की सरकारें तो भारत की आर्थिक एवं व्यावसायिक प्रगति एवं उसके द्वारा आर्थिक विकास के कार्य कर रही हैं ।

विज्ञान के नवीन आविष्कारों ने जनता के सामाजिक जीवन को सुखमय एवं आसान बना दिया है । यातायात एवं समाचार भेजने की सुविधा के लिए रेल, हवाई-जहाज, मोटर आदि का प्रचार हो गया है । स्वतंत्र भारत में तो तार, टेलीफोन, रेडियो तथा टेलिविजन का प्रचार है । मुद्रण कला एवं छापाखाने के अधिक प्रचार से जनता का कला-साहित्यिक जीवन भी प्रगतिशील हो गया ।

सचमुच पिछले सौ वर्षों में भारतवर्ष की जनता ने काफी उन्नति की है ।

६. साहित्यिक स्थिति

प्रत्येक देश का साहित्य तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक एवं धार्मिक जनजीवन का इतिहास है । आधुनिक युग साहित्यिक नवजागरण का भी युग रहा है । अंग्रेजी भाषा व साहित्य संपर्क भारत में साहित्यिक नवजागरण का कारण बन गया। सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में यह पाश्चात्य अथवा अंग्रेजी प्रभाव स्पष्टतया परि-

सचित है । 'आधुनिक भारतीय साहित्य तो अधिकांशत: पाश्चात्य प्रभाव की उपज है ।'[1] प्रख्यात भाषा वैज्ञानिक डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने अपने प्रख्यात ग्रंथ[2] में १६३७ तक भारत में व्यवहृत १७६ भाषाओं व ५४४ बोलियों का जिक्र किया है । इन में महत्त्वपूर्ण साहित्यिक भाषाओं के तौर पर हिन्दी, उर्दू, बंगाली, असमिया, उड़िया, मराठी, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी, काश्मीरी, नेपाली, तेलुगु, कन्नडा, तमिल, मलयालम जैसे १५ भाषाओं का उल्लेख भी आपने किया है । इन १५ भाषाओं के अलावा उन्नीसवीं सदी में संस्कृत, अरबी, फारसी जैसी तीन भाषाएं भी यहां प्रचलित थीं । 'सचमुच १६वीं सदी में इन तीनों भाषाओं में कोई भी भाषा तत्कालीन बोलचाल या महती साहित्यिक भाषा नहीं रही ।'[3] संस्कृत भाषा की बड़ी साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्ता रही, जिसका प्रभाव समस्त भारतीय भाषाओं पर पड़े बगैर नहीं रह सका है । हिन्दुओं पर संस्कृत ने जितना प्रभाव डाला उतना ही प्रभाव १६वीं शती में अरबी, फारसी भाषाओं ने भारतीय मुसलमानों पर डाला । फिर तो धीरे-धीरे अंग्रेजी भाषा भी महत्त्व को प्राप्त कर सकी । भारतीय पढ़े-लिखे अभिजात लोगों की वह बोलचाल की भाषा बन गयी ।

पहले पहल अंग्रेजी प्रभाव बंगला भाषा पर पड़ा और धीरे-धीरे १६वीं शती के मध्य काल में बंगाली के माध्यम से दूसरी भाषाएं भी उसके प्रभाव में आयीं । बंकिमचन्द्र चाटटरजी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि की साहित्यिक कृतियां विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई तो वे भाषाएं भी इस प्रभाव से अभिभूत हुई । 'नये प्रकार की गद्यशैलियां

१- Modern Indian literatures are mostly the products of western impact.
   - British Paramountcy and Indian Renaissance Part II. page: 162.

2. Linguistic Survey of India.

3. British Paramountcy and Indian Renaissance. Part II. page: 161.

बनीं, नयी शैली के नाटक, उपन्यास तथा कहानियाँ भी प्रकट हुईं । यूरोपीय ढंग के मुक्त छन्द या अतुकांत छन्द तथा इटालियन सोनेट जैसे रूपों का भी अब श्रीगणेश हुआ ।[१]

सन् १८०० ई० में ईसाई मिशनरियों के द्वारा मुद्रणकला का प्रयोग भारत में यत्र-तत्र हुआ । मुद्रण भी साहित्य के प्रचार व प्रसार का एक कारण रहा । भारत के विभिन्न भागों में मुद्रणालय खोले गये जहाँ मुद्रित असंख्य पुस्तकों से तत्कालीन जनता खूब लाभ उठा सकी । मुद्रणालयों ने जनता में पठन-पाठन तथा साहित्यास्वादन की रुचि बढ़ायी । भाषा एवं साहित्य के विकास के क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों का योगदान महत्व का है । अंग्रेजी से अनभिज्ञ सामान्य पाठकों में भी ईसाई धर्म के प्रचार करने के लिए उन्होंने बैबिल जैसे ग्रंथों का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने का कार्य किया । - - - - - - उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग हो विभिन्न भारतीय भाषाओं में व्याकरण संबंधी किताबों की रचना हुई तथा अनेक कोशों का भी निर्माण हुआ ।

विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच से हिन्दी भाषा का राष्ट्रभाषा के पद को प्राप्त करना तथा उसके साहित्य की सर्वांगीण उन्नति होना प्रस्तुत काल की बहुत बड़ी विशेषता है । खड़ीबोली हिन्दी दिल्ली और मेरठ के आसपास के जनसाधारण के बोलचाल की भाषा है । दिल्ली पर मुस्लिम शासन सत्ता के कायम हो जाने पर फारसी भाषा राजकार्य में व्यवहृत होती रही । मुसलमानों के शासन काल में हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी संख्या मुसलमानी राजकाज में नौकरी करती थी । इसका यह परिणाम निकला कि दोनों जातियों के पारस्परिक विचार विनिमय का माध्यम खड़ीबोली बनी रही । फारसी ही तत्कालीन राज्यभाषा थी । १६वीं सदी में गुजरात व दक्षिण भारत में

१- "European methods of literary approach were eagerly adopted.,...... The European type of blank verse and verse forms like the Italian Sonnet were introduced."

- British paramountcy and Indian Renaissance. Part.II. page:102.

भी मुस्लिम शासन स्थापित हो गया तथा तत्पश्चात् बंगाल तथा बिहार में भी मुस्लिम सत्ता स्थापित हुई । उधर भारत के मुस्लिम शासकों के साथ उनके कर्मचारी एवं अन्य व्यापारी लोग भी नये प्रदेशों में पहुँच गये । यों खड़ीबोली बोलने वाले लोग भारत के विस्तृत भूभाग में फैल गये, भाषा का भी प्रचार प्रसार बढ़ गया । ब्रीज शासन काल में देशी भाषाओं को प्रतिष्ठा मिली । "अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ शासक वर्ग को इस देश की किसी ऐसी भाषा के सीखने की आवश्यकता महसूस हुई जिसे देश के बहुत से निवासी बोलते हों । सौभाग्यवश खड़ीबोली हिन्दी देश की एक ऐसी भाषा थी जो कि शासक वर्ग एवं ईसाई धर्मप्रचारकों की आवश्यकता पूर्ति के लिए समर्थ थी ।"[१]

भारत में मुगलशासन काल से अदालतों की भाषा फारसी थी । अंग्रेजी शासन काल के प्रारंभ में भी यही भाषा जारी रही । लेकिन फारसी भाषा एवं लिपि सम्बन्धी साधारण जनता की कठिनाइयों को ध्यान में रखकर सन् १८३६ में कम्पनी सरकार ने आज्ञा निकाली कि सारा अदालती कार्य देश की प्रचलित भाषाओं में हुआ करे । फलतः संयुक्त-प्रांत में खड़ीबोली हिन्दी को वहां की अदालती भाषा स्वीकार कर लिया गया । समस्त अदालती कार्य हिन्दी भाषा और लिपि में होने लगा । कम्पनी सरकार भाषा सम्बन्धी इस नीति पर अधिक समय तक टिक नहीं सकी । हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक संघर्षों के कारण केवल एक ही वर्ष के पश्चात् उत्तरी भारत के सभी दफ्तरों की भाषा उर्दू कर दी गयी । "राज्यकार्य में युक्त-प्रांत में उर्दू जारी हो गयी हिन्दी जारी नहीं हुई । इसका फल यह हुआ कि हिन्दी की बड़ी अवनति हुई । .....अदालतों में हिन्दी के प्रवेश न करने से हिन्दी की उतनी उन्नति नहीं हुई । उर्दू सरकारी दफ्तरों में जारी थी, उसी का प्रचार था ।"[२]

१- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां - प्रो० शिवकुमार शर्मा, पृ० ५२३.

२- श्री मदनमोहन मालवीय जी का भाषण (१९१० ई०) :
हिन्दी कविता में युगांतर - डा० सुधीन्द्र, पृ० २९.

इस हिन्दी-उर्दू संघर्ष में हिन्दी के पक्षपाती एवं संरक्षक के रूप में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द एवं राजा लक्ष्मणसिंह प्रकट हुए । अनेक कठिनाइयों के बीच भी दोनों राजाओं ने हिन्दी के उद्धार का महान् कार्य किया । इन राजाओं के सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप संयुक्त प्रांत में हिन्दी का प्रचार कार्य शुरू हुआ । उनके ही समसामयिक बाबू नवीनचन्द्र राय के प्रयत्न से पंजाब में भी हिन्दी का प्रचार होने लगा । समय समय पर कई पत्रिकायें भी निकलीं जिन्होंने हिन्दी प्रचार में महान् योग दिया । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक उदंतमार्तंड, बंगदूत हिन्दोस्तान, हिन्दी प्रदीप जैसी पत्र-पत्रिकायें निकलीं थीं जिन्होंने राष्ट्रभारती हिन्दी के माध्यम से नवजागरण का सन्देश फैलाने की भरसक कोशिश की । कानपुर के पं० जुगलकिशोर द्वारा निकाला गया साप्ताहिक उदंतमार्तंड को हिन्दी की पहली पत्रिका होने का सुयोग प्राप्त है । हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए अनेकों संस्थाओं का सर्वोदय हुआ । सन् १८२३ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी भारती की ज्योति जगाकर उदित हुई । इसके बाद नागरी प्रचार के लिए और भी कई संस्थायें स्थापित हुईं । कलकत्ता विश्वविद्यालय में नवीन हिन्दी पाठ्यक्रम की योजना हुई । ऐ० सी० एस० जैसी ऊंची परीक्षाओं के लिए हिन्दी भाषा प्रयुक्त होने लगी । सन् १९०० ई० में संयुक्त प्रांत में राजकाज में नागरी का व्यवहार स्वीकृत हुआ । जल्दी ही हिन्दी भाषा का भाग्योदय होने लगा और उसका शनैः शनैः विकास हुआ । धीरे-धीरे विभिन्न संस्थाओं व पत्र-पत्रिकाओं की प्रेरणा भी प्राप्त हुई तो आधुनिक युग हिन्दी के प्रचार-विकास के विराट आन्दोलन का युग बनगया ।

आर्यसमाज ने भी हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए कार्य किया । आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दुस्तान को आर्यावर्त एवं हिन्दी को आर्यभाषा का नाम दे दिया तथा प्रत्येक आर्य के लिए आर्यभाषा का पठन-पाठन आवश्यक ठहराया गया । सचमुच दयानन्द ने तथा आर्यसमाज ने हिन्दी भाषा के प्रचार में जो महान कार्य किया, वह चिरस्मरणीय ही है ।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती, इन्दु, मर्यादा, प्रभा आदि पत्र-पत्रिकाओं ने भी हिन्दी के प्रचार में सर्वदा जागरूक रहीं। "स्वामी विवेकानन्द, महामना मालवीय, रामानन्द चट्टोपाध्याय, शारदाचरण मित्र जैसे दार्शनिक, नेता, संपादक और न्यायाधीश तक हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए प्रयत्नशील थे।" हिन्दी में गद्य ग्रंथों की रचना फोर्ट विलियम कालेज के अध्यापकों द्वारा शुरू हुई थी। कालेज के प्राध्यापक बाग्ला निवासी लल्लूलाल ने सर्वप्रथम "भागवतपुराण" में वर्णित कृष्णकथा को आधार बना कर सन् १८०३ में "प्रेमसागर" की रचना की। इस ग्रंथ का खूब प्रचार हुआ और इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रशस्त ग्रंथ भी प्रकाशित हुए।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी के विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। अपनी अमूल्य सेवाओं के कारण वे आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता माने जाते थे। आपने अनेकों मौलिक नाटकों की रचना की। संस्कृत व अंग्रेजी के अनेकों अनूठी कृतियों का अनुवाद भी आपने प्रस्तुत किया। उन्होंने दूसरे साहित्यकारों को भी साहित्य सृजन की प्रेरणा दे दी। आपका मूल-मंत्र तो हिन्दी भाषा प्रेमियों का कण्ठहार बन कर विराज रहा है --

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥"[१]

नागरी प्रचारिणी पत्रिका के मुखपृष्ठ पर भी ऐसे छन्द अंकित थे जिससे हिन्दी भाषा के महत्व को बढ़ाने का प्रयत्न हो।[२]

१- हिन्दी कविता में युगांतर - डा० सुधीन्द्र, पृ० २६

२- "करहु विलम्ब न प्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
- - - -
प्रचलित करहु जहान में निज भाषा करि यत्न।
राजकाज दरबार में फैलावहु यह रत्न॥"

भारतेन्दु युग का साहित्यिक मूल्यांकन करते हुए श्री सुधीन्द्र लिखते हैं -- "जीवन और कविता का युग-युग का टूटा सम्बन्ध पुनः स्थापित हुआ था । काव्य का स्वर बदला, भाव बदला, रंग बदला । 'वीर गाथा' और भक्ति तथा 'रीति' के युगों की कविता की तापेक्षिक तुलना में १९वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध से (अर्थात् विक्रम की बीसवीं शताब्दी से) कविता में यह अन्तरंग प्रवृत्ति प्रस्फुट हो गयी थी । .... भारतेन्दु इस क्रांति के द्रष्टा थे और उनके सहयोगी साहित्यकार उसके पोषक ।"[1]

द्विवेदी युग में आकर - बीसवीं सदी में - खड़ीबोली हिन्दी साहित्यिक भाषा का पद पा गयी । पहले जो खड़ीबोली हिन्दी बोलचाल की भाषा के रूप में अधिक रहती थी, साहित्य में उसका कम प्रयोग होता था, वह साहित्य-गद्य व पद्य-की भाषा बन गयी । काव्यक्षेत्र में चिरप्रतिष्ठित ब्रजभाषा को उसके स्थान से अपदस्थ कर, राष्ट्रभाषा खड़ीबोली को वह स्थान प्राप्त करा देने का श्रेय प्रस्तुत साहित्यिक युग के अधिनायक महावीर प्रसाद द्विवेदी को है । महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रसाद को भी प्राप्त कर हिन्दी भाषा एवं साहित्य दोनों पनप उठे । 'पुराने चावल में नव्य मद्य' पहले भरने लगा, धीरे-धीरे चावल भी नव्य बन गया, तो दोनों ही नितांत नव्य बने । यों भाव एवं भाषा दोनों में परिवर्तन कर हिन्दी साहित्य निरंतर प्रगतिशील होने लगा ।

भारतीय संघ की राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में समस्त देश की हिन्दी भाषा का क्षेत्र है, संघ के अन्तर्गत अनेक राज्यों की राजभाषा और साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी भाषा-प्रदेश की सीमायें इस प्रकार होंगी--"पश्चिम में पश्चिमी पाकिस्तान (सीमाप्रांत, प्रसिद्ध नगर बेहलमेर), उत्तर पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण में खण्डवा ।"[2] भारतीय विधान के अनुसार बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्य-

---

१- हिन्दी कविता में युगांतर - डा० सुधीन्द्र, पृ० ४०

२- हिन्दी भाषा का इतिहास - डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ६०.

प्रदेश, राजस्थान तथा दिल्ली हिन्दी प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं। इनके अलावा पंजाब और हिमाचल प्रदेश के कुछ भाग भी हिन्दी भाषी हैं।

भारतीय जनमानस की भाषा-हिन्दी राष्ट्रभाषा व राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गयी, तो सर्वत्र हिन्दी भाषा का आदर एवं प्रचार प्रसार हो गया। साहित्य की भी निरंतर प्रगति होती रही। राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीजी के प्रयत्न से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना दक्षिणी भारत के हिन्दी भाषा व साहित्यिक विकास का एक मील स्तंभ है। सभा की विभिन्न शाखाएं जी-जान से राष्ट्र-भारती की प्रगति के लिए काम करती रही। दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमी, हिन्दी के विनम्र सेवक बनाये, हिन्दी प्रचार के कार्य के साथ साथ आपने हिन्दी साहित्य भण्डार को अनूठे रत्नों से भरने का भी प्रयत्न किया। राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्यिक विकास में दक्षिण के हिन्दी सेवियों का योगदान चिरस्मरणीय एवं अमूल्य है। विश्वविद्यालयों में हिन्दी पाठ्यक्रम शुरू हुए, देश के सारे स्कूलों में अनिवार्य भाषा के रूप में हिन्दी भाषा रखी गयी।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी हिन्दी भाषा एवं साहित्य की वृद्धि के लिए प्रयत्न हो रहा है। राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा प्रेमी विद्वान् भी इस ओर कार्य कर रहे हैं। आधुनिक काल के प्रारंभ से ही हिन्दी भाषा में विभिन्न साहित्य रूपों का निर्माण हुआ था। गद्य या पद्य क्षेत्र में ऐसा कोई भी रूप नहीं रहा, जिसकी सर्वांगपूर्ण प्रगति हो नहीं सकी। सभी काव्यरूपों का सर्वांगीण विकास इस काल की प्रमुखतम विशेषता है। हिन्दी भाषा की विभिन्न विधाओं का प्रादेशिक भाषाओं में रूपांतर तथा दूसरी भाषाओं के साहित्य का हिन्दी में रूपांतर खूब हो रहा है। हिन्दी में खूब शोध कार्य चल रहे हैं तथा केन्द्रीय सरकार की ओर से हिन्दी छात्रों को छात्रवृत्तियां भी दी जाती हैं। केन्द्रीय साहित्य अकादमी विभिन्न भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथों के प्रकाशन व पुरस्कार देने का कार्य कर रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में भाषा विकास के साथ साथ साहित्य का भी खूब विकास हुआ । साहित्य के विभिन्न रूपों के अभिनव प्रयोग अब हो लगे । धीरे-धीरे कतिपय साहित्यांगों का नया रूप निखर आया - जैसे नयी कविता, नयी कहानी । आधुनिक वैज्ञानिक व बौद्धिक युग में साहित्य में भी परिप्रेक्ष्यानुकूल परवर्तन अवश्यंभावी है । नये परिवेश के अनुकूल हिन्दी साहित्य ने भी आवश्यक परिवर्तन किया है ।

७. आधुनिक कालीन प्रमुख काव्य प्रवृत्तियां

आधुनिक काल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों के आलोक में तत्कालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का पर्यवेक्षण वांछनीय है । छायावाद पूर्व युग, छायावादी युग तथा छायावादोत्तर युग - इस प्रकार तीन भागों में आधुनिक हिन्दी की काव्यगत प्रवृत्तियों का एक विहंगावलोकन इस प्रसंग में उचित है ।

(क) छायावादपूर्व युग

इस युग में भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग की कविता आ जाती है । भारतेन्दु का काल सचमुच हिन्दी कविता का प्रवेश द्वार रहा है । भावक्षेत्र तथा रूपक्षेत्र दोनों में प्राचीनता व नवीनता को इस युग ने अपना लिया । तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियां इस काल की कविता में बहुधा मुखरित हैं । "नवीन कविता में यथार्थवाद प्रधान है । वह समकालीन इतिहास को दोनों भुजाओं से आवृत किये हुए है । नव शिक्षित कवियों को देश का अधःपतन, देश की रूढ़िप्रियता, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण, पुलिस और अदालती लोगों की लूट-खसोट, भारत की निर्धनता, पारस्परिक कलह आदि बातें देखकर मर्मान्तक पीड़ा होती थी । नवीन कविता में देशभक्ति, लोकहित, सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्निर्माण, मातृभाषोद्धार स्वतंत्रता आदि का स्वर उच्च हुआ ।[१]

१- हिन्दी साहित्यकोश : भाग १ - पृ० ५६०.

इस कविता में तत्कालीन राजनीतिक चेतना मुखरित है तथा अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति, आर्थिक शोषण, आदि के प्रति कटु विरोध का स्वर भी बुलन्द है। नव शिक्षित मध्यवर्ग की चेतना ही इस के मूल में है। देश प्रेम का अमर सन्देश वहन करने वाली तत्कालीन कविता राजनीति के प्रति सर्वदा जागरूक है। इस काल की प्रकृति-वर्णन-शैली भी परम्परा युक्त रही है। "ये लोग नर प्रकृति के वर्णन में अधिक रमे हैं, बाह्य प्रकृति के वर्णन में नहीं। ...... इनके प्रकृति-वर्णन में संवेदनशीलता का अभाव है और नागरिकता की बहुलता।"[१] विभिन्न सामयिक विषयों पर इस काल में उपदेशात्मक व सुधारात्मक कवितायें विरचित हुई। काव्यक्षेत्र में ब्रजभाषा का ही प्राधान्य रहा, यद्यपि खड़ीबोली में भी छुट-पुट कवितायें निकलने लगी थीं। इस काल की कविता में नवीन छन्दों का सर्वथा अभाव है। परम्परा से चले आते हुए सवैया, रोला, छप्पय आदि छन्द, लावनी, कजली आदि लोकप्रचलित छन्द का ही प्रामुख्य रहा। संस्कृत वर्णवृत्तों में भी कविता रची जाती थी। सचमुच हिन्दी कविता के विकास में भारतेन्दु युग का ऐतिहासिक व साहित्यिक महत्व अक्षुण्ण है।

भारतेन्दु युग में जिन नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ, द्विवेदी युग में उन का क्रमिक विकास हुआ। पहले तो प्रबन्ध काव्यों एवं गीतिकाव्यों का एक प्रकार से अभाव रहा, किन्तु इस युग में महाकाव्य, खण्डकाव्य, आख्यानक काव्य, गीतिकाव्य आदि विभिन्न काव्यरूपों का सर्वांगीण विकास हुआ। काव्य रूपों की विविधता इस काल की अनूठी विशेषता है। इस युग में इतिवृत्तात्मक काव्यों की प्रधानता रही। इस युग के अंत में आकर इतिवृत्तात्मक कविताओं की भावात्मकता की ओर नया मोड़ भी दृष्टिगत होता है। विभिन्न उद्वेगपूर्ण राजनीतिक गतिविधियों के कारण इस काल की कविता की राजनीतिक चेतना और प्रौढ़ रही। राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति ने और प्रमुख रूप को प्राप्त किया। स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति के उदय के साथ-साथ प्रकृति वर्णन में नवीनता आ गयी। इस काल

१- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - शिवकुमार शर्मा, पृ० ४३८.

के कवियों में एक नवीन मानवतावादी दृष्टिकोण विद्यमान रहा तथा रूढ़ियों व परम्पराओं को तोड़ कर तत्कालीन कवियों ने एक नितांत नवीन युग का प्रारंभ किया । ब्रजभाषा की प्राचीन परम्परा के पालन करने वाले अब विरले रहे । काव्यक्षेत्र में खड़ीबोली हिन्दी की प्रतिष्ठा हो गयी । इस काल के कवियों ने विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया । हिन्दी, उर्दू और संस्कृत के विविध छन्दों के प्रयोग में वे सर्वदा सफल रहे । अनुवाद की प्रवृत्ति को इस काल में अधिक प्रोत्साहन मिला । हिन्दी भाषा व साहित्य को प्रौढ़ व समृद्ध बनाने के उद्देश्य से इस काल में द्विवेदीजी के नेतृत्व में देशी व विदेशी भाषाओं की कविताओं का खड़ीबोली हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत हुआ । इन अनुवाद कार्यों के कारण हिन्दी काव्य का दायरा और विस्तृत हो गया ।

(ख) छायावाद युग

हिन्दी की छायावादी कविता अंग्रेजी रोमान्टिक कविता से बहुत कुछ प्रभावित है । मध्यकालीन चेतना के विद्रोह का सुस्पष्ट स्वर इसमें सुनाई पड़ता है । इस काल की परिस्थितियों एवं विचारधाराओं ने तत्कालीन जीवन व काव्य को खूब प्रभावित किया है । "पूंजीवाद का विकास और व्यक्तिवाद का जन्म, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का उदय, प्रथम महायुद्ध का प्रभाव, राजनीति के क्षेत्र में महात्मा गान्धी का आन्दोलन और संपूर्ण समाज में स्वातंत्र्य प्रेम का जागरण, नयी पीढ़ी पर पश्चिमी सभ्यता का रंग चढ़ना तथा अंग्रेज रोमांटिक कवियों से प्रभावित होना, कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति श्रद्धा, बंगाल में ब्रह्म-समाज का आन्दोलन और राजाराम मोहनराय के क्रांतिकारी विचार, स्वामी दयानन्द सरस्वती का कर्मकाण्डी वैष्णव धर्म के विरुद्ध आन्दोलन -- इन विभिन्न सांस्कृतिक परि-स्थितियों ने मिल-जुल कर छायावाद को जन्म दिया ।"[1] आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित व्यक्तिवाद ही छायावादी काव्य की मूल प्रवृत्ति है । "आधुनिक युग की प्रतिद्वन्द्वात्मक

१- हिन्दी साहित्य कोश : भाग १, पृ० ३२८.

व्यवस्था, अधिकार स्वायत्ता और पूंजीवादी मितव्ययता के परिणामस्वरूप व्यक्तिवाद का जन्म हुआ । इस व्यक्तिवाद के फलस्वरूप छायावादी कवि ने स्वच्छन्दतावाद तथा कलावाद की दुहाई दी जो नैसर्गिक भी थी ।[१] अब तो बुद्धि के विरुद्ध हृदय तथा स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म विद्रोह कर उठे । अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण काव्य वस्तु अधिकांशत: सूक्ष्म हो चली । प्रकृति-चित्रण की भी एक नितांत नवीन शैली ने अब जन्म ले लिया । छायावादी कविता में प्रकृति कवि के वैयक्तिक जीवन के प्रतीक के रूप में प्रकट हुई । प्रकृति पर सर्वत्र मानवीय भावनाओं का आरोप हो गया । दार्शनिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना तथा प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं के चित्रण में भी प्रतीकात्मकता का प्रयोग हो गया । चित्रात्मक भाषा एवं लाक्षणिक पदावली भी छायावाद काल को निजी व्यक्तित्व प्रदान कर देती है । छायावादी कविता छंद एवं संगीत दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । प्राचीन छंदों के प्रयोग के साथ-साथ छायावादी कविता में नवीन छन्दों का निर्माण हुआ । मुक्तक एवं अतुकांत छंद की कविता इस युग की अनूठी उपलब्धि है । शैली के दो नवीन अलंकारों -- मानवीकरण (Personification) तथा विशेषण-विपर्यय (transferred epithet) -- का सफल प्रयोग छायावादी काव्य में द्रष्टव्य है । छायावादी युग में प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य विरचित हुए । सचमुच छायावादी कविता का अक्षय गौरव है जिसने भाव एवं शैली के क्षेत्र में क्रांति मचायी ।

(घ) छायावादोत्तर-युग

प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी (नयी कविता) कविताओं से छायावादोत्तर युग सम्पन्न हो जाता है । जीवन के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण के बदलते-बदलते साहित्यक्षेत्र में भी नयी क्रांति मच जाती है । छायावादकाल के उपरांत जीवन के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण बदल गया तो काव्यक्षेत्र में प्रगतिवाद का प्रादुर्भाव हुआ । `छायावादकाल

१- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - शिवकुमार शर्मा, पृ० ४६६-६७.

तक हिन्दी के साहित्यकार का दृष्टिकोण भावात्मक था । वैसे छायावाद ने भी परम्परा के प्रति विद्रोह किया, किन्तु छायावादियों का यह विद्रोह प्राय: वैयक्तिक स्तर तक ही उठ सका । छायावाद के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवादी आन्दोलन की आवश्यकता हुई ।[१] जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद नाम से अभिहित की जाती है । मार्क्सवादी अथवा साम्यवादी दृष्टिकोण के मुताबिक प्रणीत काव्यधारा ही प्रगतिवादी काव्य है । तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक विषमता का यथार्थ चित्र निडर होकर प्रस्तुत किया । जन-जीवन की कठोरता, संघर्ष, आर्थिक विषमता आदि का मार्मिक चित्र प्रगतिवादी कविता में दृष्टिगोचर होता है । क्रांतिकारी प्रगतिवादी कवियों ने समाज की रूढ़ियों का सख्त विरोध किया है, शोषकों के प्रति घृणा एवं रोष का भाव प्रकट किया है तथा शोषितों के प्रति अपनी सहानुभूति की अभिव्यक्ति की है । प्रगतिवादियों की कला-सम्बन्धी मान्यता भी भिन्न रही । प्रगतिवादी कवियों को क्रांति की भावना के प्रचार के लिए कलात्मकता का त्याग करना पड़ा । समाज की आम जनता तक पहुँचने वाली कविता की ही आपने रचना की । सरलता एवं सुबोधता प्रगतिवादी कविता की प्रमुख विशेषता है । छायावाद की संस्कृतमयी पदावली, क्लिष्ट प्रतीकात्मकता और लाक्षणिक योजना के विरुद्ध यहाँ विद्रोह है । प्रगतिवादी काव्य में भाव, भाषा, छन्द, अलंकार सभी दिशाओं में स्वाभाविक प्रगति हुई है ।[२] सरल, सरस एवं भावाभिव्यक्ति में सक्षम भाषा ही तत्काल प्रयुक्त हुई । प्रगतिवादी कवियों का विषयक्षेत्र बहुत ही सीमित रहा है, जीवन के भौतिक पक्ष पर ही प्रगतिवादी काव्य में विचार व्यक्त हुआ है ।

छायावादोत्तर युग का महत्वपूर्ण भाग नयी कविता या प्रयोगवादी कविता का ही है । सन् १९४३ ई० में अज्ञेय जी तथा उनके छ: मित्रों के सहयोग से 'तारसप्तक' का

१- हिन्दी साहित्य कोश : भाग १ - सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ५०६.

२- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - प्रो० शिवकुमार शर्मा, पृ० ५०२.

का प्रकाशन हुआ और यहीं से नयी कविता का युग शुरू होता है । इस कविता का मूलस्रोत भाव के युग सत्य तथा युग यथार्थ में ही निहित है । इस कारण नयी कविता में गद्य की सी यथार्थता और काव्य की सी संवेदनशीलता दोनों एक साथ एक सर्वथा अभिनव भावभूमि पर अनुभूति को अभिव्यक्त करती है । इन नये कवियों के सम्मुख वर्तमान युग की जटिल संवेदनायें थीं । समस्त जीवन बड़ी तेजी से बदल रहा था । समाज की सभ्यता मशीनी हो चुकी थी । वैज्ञानिक युग में सामाजिक जीवन का ताना-बाना उलट-पलट गया था । इसी अभिनव सेमें में सत्तालीन कवि भी आ गये । उन्होंने काव्यक्षेत्र में नवीन प्रयोग किये । 'प्रयोगवाद ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ने की बौद्धिक जागरूकता है । यह जागरूकता 'व्यक्ति-सत्य' और 'व्यापक सत्य' के स्तरों पर व्यक्ति की अनुभूति की सार्थकता को भी महत्वपूर्ण मानती है । प्रयोगवाद व्यक्ति-अनुभूति की शक्ति को मानते हुए समष्टि की सम्पूर्णता तक पहुँचने का प्रयास है ।'[१] कवि के व्यक्तित्व की स्वतंत्रता पर विश्वास रखने वाले ये कवि काव्य के अन्तरंग व बहिरंग में नितांत नूतन प्रयोगों के आविष्कार में सफल हुए । घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद तथा अति मग्न यथार्थवाद प्रयोगवादी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां रहीं । प्रयोगवादियों के काव्य विषयों की परिधि भी असीम रही । प्रयोगवादी कविता में शिल्प की अतिविशिष्ट प्रतिष्ठा है । आधुनिक काल के काव्य के शिल्प विकास के मूल में इन्हीं काव्यशिल्पियों का हाथ रहा है । प्रयोगवादी कवियों ने शिल्प को शिल्पी के व्यक्तित्व का अटूट अंग स्वीकारा है तथा उसका विकास किया है । इन्होंने काव्यशैली में कई प्रयोग किये । इनकी काव्यभाषा भी विलक्षण रही । 'भाषा में नवीन प्रयोग की हठवादिता से इन्होंने अपनी कविता की भाषा में भूगोल, विज्ञान, दर्शन, मनोविश्लेषण, शास्त्र एवं बाजारू बोली के शब्दों का प्रयोग करने में संकोच नहीं किया है । ..... भाषा, भाव, शैली और छन्द आदि के क्षेत्र में रुचि-सम्पन्नता के स्थान पर अनपेक्षित विलक्षणता को प्रश्रय देने के कारण इनकी कविता का अपना ढांचा भी आधुनिक सांस्कृतिक ढांचे के

१- हिन्दी साहित्य कोश : भाग १ - सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ५३०.

समान परम्परा उठा है ।[१] वस्तुत: प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्तियां तत्कालीन मानव व्यक्तित्व की झांकियां ही हैं । इस काल में भी कई उत्तम काव्य उद्भूत हुए, यह तो हिन्दी काव्यक्षेत्र के लिए सुयोग की ही बात हुई है । इस काल ने मुक्तक काव्यों के साथ प्रबन्ध काव्यों को भी जन्म देकर हिन्दी काव्य कोष को भरने का प्रयास किया ।

रूप एवं भाव की दृष्टि से यह आधुनिक काव्यधारा अपने पूर्वज से नितांत भिन्न रही । पहले से ही व्रजभूमि की मधुर भाषा- व्रजभाषा - काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठा पा चुकी थी । आधुनिक काल के प्रारंभ तक यह भाषा प्रमुख काव्य भाषा के पद की अधिकारिणी रही । मुसलमानों ने जब दिल्ली में डेरा डाला तो अपने विचार-विनिमय का कार्य वहां की स्थानीय बोलचाल की भाषा - खड़ीबोली - में शुरू किया । मुसलमानों के प्रयोग के कारण इसमें अरबी, फारसी के शब्दों का अधिक मिश्रण हुआ । अंग्रेजों के आगमन और उनके साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ खड़ीबोली का प्रचार क्षेत्र भी वृहत् हो गया । हिन्दी के गद्य-साहित्य का श्रीगणेश भी इसी खड़ीबोली में हुआ । इन दिनों भी खड़ीबोली को काव्य भाषा की प्रतिष्ठा नहीं मिली थी । अब भी काव्य भाषा व्रज ही रही । व्रजभाषा काव्य भाषा के रूप में इतनी लोकप्रिय हो चुकी थी कि खड़ीबोली के आन्दोलन के छिड़ने पर व्रजभाषा का मोह लोगों से छोड़ते नहीं बनता था । किन्तु बाद में व्रजभाषा के कुछ अनन्य पुजारी भी खड़ीबोली की ओर मुड़े । कुछ समय तक खड़ीबोली तथा व्रज दोनों भाषाओं में काव्य रचना की परंपरा चलती रही । महावीर प्रसाद द्विवेदी तक आते-आते खड़ीबोली पकड़ कर काव्य भाषा के रूप में खड़ी रह सकी । काव्य भाषा के रूप में खड़ी-बोली के आन्दोलन का इतिहास द्रष्टव्य है ।

खड़ीबोली में काव्य-रचना कोई एकदम नवीन बात नहीं थी । इसके पूर्व भी खड़ीबोली काव्य भाषा बन चुकी थी । यों तो प्रचार की दृष्टि से नवीन होते हुए भी

१- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां - शिवकुमार शर्मा, पृ० ५१५-१६.

यह भाषा प्रयोग की दृष्टि से प्राचीन है । "नामदेव और कबीर की रचना में हम खड़ी-बोली का पूरा स्वरूप देख सकते हैं .... उसका व्यवहार अधिकतर सधुक्कड़ी भाषा के भीतर हुआ करता था ।"[1] इसके पूर्व तेरहवीं शती में रचित अमीर खुसरो की पहेलियों में भी खड़ीबोली की स्पष्ट झाँकी है । यों तो अमीर खुसरो से ही खड़ीबोली कविता की परम्परा का श्रीगणेश होता है --

"एक थाल मोती से भरा । सबके सिर पर औंधा धरा ।।
चारों ओर वह थाली फिरे । मोती उससे एक न गिरे ।।"

(आकाश)

"एक नार ने अचरज किया । सांप मार पिंजड़े में दिया ।।
ज्यों ज्यों सांप ताल को खाए । सूखे ताल सांप मर जाए ।।"

(दिया बत्ती)

"अरथ तो इसका बूझेगा । मुँह देखो तो सूझेगा ।।"

(दर्पण)

अमीर खुसरो की इन पहेलियों में खड़ीबोली हिन्दी का निखरा हुआ रूप दृष्टिगत होता है । कबीरदास ने भी खड़ीबोली में पद सुनाया था --

"कद्दू काट मृदंग बनाया । नींबू काट मंजीरा ।
सात तरोई मंगल गावे, नाचे बालम खीरा ।।"

कविवर रहीम की कविता में भी खड़ीबोली का रूप दर्शनीय है --

"कलित ललित माला या जवाहिर जड़ा था ।
चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था ।।"

हिन्दी साहित्य के आदि-भक्ति युगों में विरचित उपर्युक्त कविताओं में खड़ी-बोली का स्पष्ट रूप मुखरित है । यों सुस्पष्ट है कि खड़ीबोली काव्य बीसवीं शताब्दी का

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५७१.

नितांत नूतन कार्य तो नहीं, किन्तु खड़ीबोली में प्रचुर रूप में काव्य निर्माण तो आधुनिक काल में ही हुआ ।

गद्य भाषा के रूप में खड़ीबोली के प्रतिष्ठित हो जाने पर काव्यभाषा के रूप में भी खड़ीबोली को अभिमण्डित करने की एक लहर शुरू हो गयी । उन्नीसवीं शती में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल में खड़ीबोली में कविता रचना की लहर उठी थी । भारतेन्दु के मन में यह लहर पहले ही प्रस्फुटित हुई थी । इस बीच पं० श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली में अंग्रेज कवि गोल्डस्मिथ के काव्य 'द हरमिट' (The Hermit) का सुन्दर अनुवाद किया (१८८६) । इस अनुवाद काव्य 'एकान्तवासी योगी' की भाषा खड़ीबोली इतनी सरस एवं मंजी हुई थी कि लोग इसके प्रभाव में आ गये ।

इसके अनन्तर खड़ीबोली के लिए एक आन्दोलन ही खड़ा हो गया । बिहार (मुजफ्फरपुर) के बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री खड़ीबोली का झंडा लेकर निकले । आपने सन् १८८७ में खड़ीबोली कविताओं का छोटा सा संग्रह --' खड़ीबोली का पद्य' नाम से प्रकाशित किया और काव्य भाषा के रूप में खड़ीबोली को स्वीकार करने का अपना मत प्रकट किया । सन् १८८८ में आपने 'खड़ीबोली आन्दोलन' नामक एक पुस्तक का प्रकाशन किया । भाषा-विज्ञान के वे विशेषज्ञ नहीं थे । आपने यह घोषणा की कि अब तक जो कविता हुई, वह ब्रजभाषा की है, हिन्दी की नहीं । वे खड़ीबोली को ही हिन्दी समझते थे । दूसरे कवियों से अनुरोध करके आपने खड़ीबोली में कविताएं लिखायीं । पं० चन्द्रशेखर मिश्र जैसे व्यक्तियों ने इस समय खड़ीबोली में कविता की। लेकिन ब्रजभाषा में भी कविता हो रही थी । खड़ी-बोली की काव्यक्षेत्र में स्वीकृति की संभावना तब से बढ़ने लगी जब से ब्रजभाषा के कवियों ने भी खड़ीबोली में काव्य सृजन आरंभ कर दिया । पं० श्रीधर पाठक, नाथूराम शंकर शर्मा, तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण ऐसे ही कवि हैं ।

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' के संपादक के रूप में आने के पूर्व ही खड़ीबोली काव्यक्षेत्र में प्रतिष्ठा पा ली थी और अनेक कवियों ने काव्य रचना भी इस

भाषा में की थी । 'एकान्तवासी योगी' तथा 'जगत सचाई सार' जैसे काव्य ग्रंथों द्वारा पाठक भी खड़ीबोली कविता का उदीयमान रूप प्रस्तुत कर चुके थे । किन्तु ब्रजभाषा को अपने स्थान से मुक्त कर काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली को प्रतिष्ठा देने का महान् कार्य द्विवेदी जी के हाथों ही संपन्न हुआ है । आपने कविता के लिए खड़ीबोली के शुद्ध रूप की माँग प्रकट की । आपने अपनी कविताओं के द्वारा खड़ीबोली का पुष्ट रूप प्रस्तुत किया था । द्विवेदी जी खड़ीबोली की काव्यत्वहीनता से सदा चिन्तित थे और उसके अभावों के प्रति सदैव सजग भी । सन् १८९८ में 'हरीसमद्ध-मित्र' में प्रकाशित 'काककूजितम्' नामक आप की कविता के द्वारा आपने तत्कालीन काव्यरचना पर व्यंग्य किया था । सन् १९०० में 'सरस्वती' में आपने 'हे कविते ।' शीर्षक एक कविता प्रकाशित की । उसमें तत्कालीन कविता की दशा का अच्छा चित्रण था --

'सुरम्य रूपे रस-राशि-रंजिते । विचित्र वर्णाभरणे
कहाँ गई ?
अलौकिकानन्द विधायिनी महा, कवीन्द्र कान्ते ।
कविते । अहो कहाँ ?'

काव्यभाषा में सुधारा लाने का आपने भरसक परिश्रम किया । बहुत से कवियों की शिथिल एवं अव्यवस्थित भाषा को 'सरस्वती' संपादन काल में आपने सुधार दिया । आपकी प्रेरणा से नये लोग खड़ीबोली में कविता भी करने लगे । द्विवेदी युग में खड़ीबोली हिन्दी काव्य का अभूतपूर्व विकास होता है ।

प्रारंभ में खड़ीबोली का प्रयोग उर्दू छन्दों में होता था । हिन्दी के अपने छन्दों को छोड़कर उर्दू छन्दों को ग्रहण करने की एक प्रवृत्ति ही चल रही । यह प्रवृत्ति भारतेन्दु-काल में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक रही । इस क्षेत्र में भी क्रांति करने वाले हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी जी । आपने संस्कृत काव्य में चिरप्रयुक्त वर्णिक छन्दों को अपनाने का संकेत दिया । संस्कृत छन्दों में आपने संस्कृत के प्रख्यात काव्य 'कुमारसंभव' का 'कुमार संभवसार' अनुवाद प्रस्तुत किया । इसका अनुवाद बहुत ही उत्तम और सफल हुआ । 'सरस्वती' में

प्रकाशित 'हे कविते ।' नामक कविता भी संस्कृत वर्ण छन्दों में रची गयी थी ।

छन्दों में क्रांति उपस्थित करने में द्विवेदीजी सफल मनोरथ हुए । आपका दिशा-निर्देशन अचूक ही निकला । 'दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका । कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकें तो इनके अतिरिक्त और भी छन्द लिखा करें ।'[1] इस घोषणा के फलस्वरूप ही मानो हिन्दीकाव्य-गगन में मन्दाक्रांता, मालिनी, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा की विजय-वैजयन्तियां फहराने लगीं तथा उनके आगे दोहे, चौपाई, कवित्त, सवैये का बोझिल हो गये । सचमुच खड़ीबोली हिन्दी को खड़ी करने में इन वर्णिक छन्दों का भी बड़ा योगदान रहा है ।

क्रांतिकारी कवि द्विवेदीजी भी अन्त्यानुप्रास के मोह से जकड़े ही रहे । आपके अनुगामी मैथिलीशरण गुप्त जी, लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि ने भी अन्त्यानुप्रास का अक्षुण्ण प्रयोग किया । इस युग में तुकान्तता से मुक्त काव्य रचना करने का श्रेय अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी को प्राप्त है । अतुकांत गणवृत्तों में विरचित आपका महाकाव्य 'प्रियप्रवास' इस युग की महान् उपलब्धि है । इसी शैली का अनुसरण करते हुए रामचरित उपाध्याय ने 'रामचरित चिन्तामणि' के कुछ सर्ग लिखे ।

छन्द क्षेत्र में क्रांति तब चरमसीमा पर पहुंच जाती है जब काव्यक्षेत्र में मुक्तछन्द का प्रवेश होता है । इन मुक्त या स्वच्छन्द छन्दों में भी एक प्रकार का बन्धन रहता है । इसमें अन्त्यानुप्रास के बन्धन से मुक्ति है, परन्तु मात्रा की गणना का बन्धन है । गणवृत्त में भी अन्त्यानुप्रास के बन्धन से मुक्ति है, परन्तु गण के क्रम का बन्धन है । वर्णवृत्त में भी अन्त्यानुप्रास के बन्धन से मुक्ति है, लेकिन वर्ण की समान संख्या से नहीं । लेकिन ऐसे भी छन्द हैं जिसमें मात्रा, गण या वर्ण का कोई बन्धन नहीं । रहता है तो केवल लय का बन्धन ।

१- कवि-कर्तव्य - द्विवेदी, सरस्वती, जुलाई १९०० ई० ।

मुक्तछन्द की व्याख्या करते हुए श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखा है --"जहां मुक्ति रहती है वहां बन्धन नहीं रहते न मनुष्यों में न कविता में । मुक्ति का अर्थ ही बन्धनों से छुटकारा पाना है । यदि किसी प्रकार का शृंखलाबद्ध नियम किसी कविता में मिलता गया तो वह कविता उस शृंखला से जकड़ी हुई ही होती है । अतएव उसे हम मुक्ति के लक्षणों में नहीं ला सकते, न उस काव्य को मुक्त काव्य कह सकते हैं । मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है ।"[१] सर्वप्रथम स्वच्छन्द छन्दों का प्रयोग हिन्दी में सर्वप्रथम श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने ही किया । 'जुही की कली' कविता को ही इस का श्रेय प्राप्त है । लेकिन इसके ही पूर्व लोचनप्रसाद पाण्डेय तथा जयशंकर प्रसाद ने कुछेक वर्ष में खड़ीबोली में कविता की रचना की है ।

आधुनिक काल में आकर खड़ीबोली काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। फिर भी ब्रजभाषा में भी कविता रचने वाले अनेकों सरस कवि हुए । आधुनिक काल के प्रारंभिक चरण में तो ब्रजभाषा में खूब कवितायें लिखी गयीं । स्वयं भारतेन्दु ने ब्रजभाषा में कविता का सृजन किया । पं० श्रीधर पाठक ने भी ब्रजभाषा को सुसमृद्ध करने का कार्य किया है । आपने 'ऋतुसंहार' काव्य का ब्रजभाषा में सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया । ब्रज-भाषा की पुरानी परिपाटी के कवियों में श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर का ही महान् स्थान है । इन्होंने हरिश्चन्द्र, गंगावतरण और 'उद्धवशतक' जैसे प्रबन्ध-काव्यों का भी प्रणयन किया है । अंग्रेजी कवि पोप के समीक्षा सम्बन्धी प्रख्यात काव्य 'एसेज़ ऑन क्रिटिसिज्म (Essays on criticism) का भी आपने सुन्दर अनुवाद किया । (समालोचनादर्श - सन् १९१६ई०) । राय देवीप्रसाद पूर्ण, वियोगी हरि जैसे कवि भी ब्रजभाषा में कविता की प्रोतस्विनी बहायी ।

आधुनिक युग के प्रारंभिक चरण में ही साहित्यिक वायुमण्डल बहुत अधिक परि-वर्तित हो चुका था । रीतिकालीन वायुमण्डल का अस्त हो चुका था और नवीनता का सूर्य

१- परिमल : भूमिका - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ।

किरणें फैलाने लगा था । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता धारा को नये-नये विषयों की ओर लगाया और नवीन क्षेत्र की ओर मोड़ दिया । सबसे मुखरित स्वर तो देशभक्ति का रहा । साथ ही साथ समाज-सुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि का स्वर भी गूंज उठा । तत्कालीन नूतन परिस्थितियों के अनुरूप काव्यधारा भी ढल गयी ।

काव्य विषय व्यापक हो गये तो उनकी अभिव्यक्ति के ढंग में भी अनेकरूपता आ गयी । विषयों की अनेकरूपता के साथ-साथ उनके विधान का ढंग भी बदल चला । प्राचीनधारा में 'मुक्तक' और 'प्रबन्ध' की जो प्रणाली चली आती थी, उससे कुछ भिन्न प्रणाली का भी अनुकरण करना पड़ा । पुरानी कविता में प्रबन्ध का रूप कथात्मक और वस्तुवर्णनात्मक ही चला आता था । या तो पौराणिक कथाओं, ऐतिहासिक वृत्तों को लेकर छोटे बड़े आख्यानकाव्य रचे जाते थे । . . . . अनेक प्रकार के सामान्य विषयों पर जैसे बुढ़ापा, विधिविडंबना, जगत्सारासार, गोरक्षा, माता का स्नेह, सपूत, कपूत -- कुछ दूर तक चलती हुई विचारों और भावों की मिश्रित धारा के रूप में छोटे-छोटे प्रबन्धों या निबन्धों की बात न थी । . . . . पर नवीनधारा के आरंभ में छोटे-छोटे पद्यात्मक निबन्धों की परम्परा भी चली जो प्रथम उत्थानकाल के भीतर तो बहुत कुछ भावप्रधान रही, पर आगे चलकर शुष्क और इतिवृत्तात्मक (मैटर आफ फैक्ट) होने लगी ।[१]

नवीन धारा के बीच भारतेन्दु की वाणी का बुलन्द स्वर देशप्रेम का रहा । आपकी कविताओं में भारत की दशा की मार्मिक अभिव्यंजना एवं अतीत की गौरवगाथा का अच्छा चित्रण है । भारतेन्दु परम्परा में आने वाले कवि पं० प्रतापनारायण मिश्र ने देश की दुर्दशा पर अश्रु बहाने के साथ ही साथ बुढ़ापा, गोरक्षा जैसे विषयों को भी अपनी कविता का विषय बनाया । उनके कुछ इतिवृत्तात्मक पद्य भी मिलते हैं । भारतेन्दु के उपरान्त खड़ी बोली काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी । महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का प्रसाद पाकर खड़ी बोली में ही काव्यपरम्परा चल पड़ी । श्रीधर पाठक सर्वप्रथम 'एकांत-

---

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास (१३ वां संस्क०) - पं० रामचन्द्रशुक्ल - पृ० ५६३-६४.

वासी योगी` नामक अनुवाद काव्य खड़ी बोली में लिखकर खड़ी बोली काव्यपरम्परा के उन्नायक बन गये । एकान्तवासी योगी आंग्ल कवि गोल्डस्मिथ के `ट्रावलर` काव्य का सुन्दर अनुवाद है । इसके बाद आपने दो और काव्यग्रन्थों का अनुवाद प्रस्तुत किया । गोल्डस्मिथ के `हेरमिट` ( Hermit ) का `श्रान्तपथिक` तथा `डेजर्टेड विलेज` ( Deserted village ) का `ऊजड़ ग्राम` । भारतेन्दु युग से ही कविता रचने वाले अयोध्यासिंह उपाध्याय `हरिऔध` जी द्विवेदी युग में संस्कृत छन्दों और समस्त पदशैली लेकर खड़ी बोली काव्यक्षेत्र में अवतरित हुए । `प्रियप्रवास` खड़ी बोली में रचित आपका सर्वप्रथम सफल प्रबन्धकाव्य है । इसके अलावा आपने `वैदेही वनवास` नामक कथाकाव्य लिखा तथा चौखे-चौपदे जैसे फुटकर कविताओं के संग्रह भी निकाले । मैथिलीशरण गुप्त जी तो द्विवेदी युग के प्रबन्ध काव्यकार हैं, जिन्होंने पच्चीसों प्रबन्धकाव्यों का सृजन करके हिन्दी काव्यदेवता की उपासना की ।

काव्यक्षेत्र में स्वच्छन्दतावाद या रोमान्टिसिज्म का आगमन सचमुच द्विवेदी युग से ही आरंभ होता है । रीतिकालीन परम्परा पूर्णरूप से यहीं बिछुड़ जाती है तथा बिल्कुल नवीन परम्परा शुरू हो जाती है । खड़ी बोली हिन्दी काव्यभाषा के रूप में अब ही चिर-प्रतिष्ठा पा लेती है । यहीं रीतिकालीन भाषाशैली, छन्द, पाण्डित्य प्रदर्शन आदि का विरोध हुआ । विषयवस्तु की प्रधानता बढ़ गयी । द्विवेदी युग में एक ओर ऐसी विचार-धारा दर्शित होती है तो दूसरी ओर काव्यक्षेत्र के दार्शनिक एवं कलात्मक परिवर्तन भी दृष्टिगत होता है । पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव इस विचारधारा का मूल है । इसके फलस्वरूप छायावादी युग की पृष्ठभूमि भी यहीं से तैयार हुई ।

द्विवेदी युग अथवा छायावाद पूर्व युग में विभिन्न काव्यरूपों का निर्माण हुआ । द्विवेदीयुग में आख्यान काव्यों की एक लम्बी परम्परा ही चली । द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं असंख्य मुक्तक कविताओं की रचना की । गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्रा कुमारी चौहान, सियाराम शरण गुप्त आदि द्विवेदी युग के प्रमुख कवि हैं ।

सचमुच यह काल हिन्दी काव्य का सुवर्ण युग रहा । काव्य भाव एवं भाषा के क्षेत्र में क्रांति एवं शृंगार के साथ, अभिनव रूपों को लेकर काव्यजगत में उपस्थित हुआ ।

हिन्दी काव्य-विकास में छायावादी काल की अपनी विशेष प्रतिष्ठा है । साहित्य के भाव एवं रूप दोनों क्षेत्रों में छायावाद ने महान् आन्दोलन उपस्थित किया । वस्तुत: छायावाद मध्यवर्गीय-चेतना के विद्रोह का दूसरा नाम है । उस विशिष्ट काल की परिस्थितियों और विचारधाराओं ने विविध रूप में जीवन और काव्य को प्रभावित किया था । पूंजीवाद का विकास और व्यक्तिवाद का जन्म, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का उदय, प्रथम महायुद्ध का प्रभाव, राजनीति के क्षेत्र में महात्मा गांधी का आन्दोलन और सम्पूर्ण समाज में स्वातन्त्र्य-प्रेम का जागरण , नयी पीढ़ी पर पश्चिमी सभ्यता का रंग चढ़ना तथा अंग्रेज रोमांटिक कवियों से प्रभावित होना, कविन्द्र रवीन्द्र के प्रति श्रद्धा, बंगाल में ब्रह्मसमाज का आन्दोलन और राजाराम मोहनराय के क्रांतिकारी विचार, स्वामी दयानंद सरस्वती का कर्मकाण्डी वैष्णव धर्म के विरुद्ध आन्दोलन-- इन विभिन्न सांस्कृतिक परिस्थितियों ने मिल जुलकर छायावाद को जन्म दिया ।[१] हिन्दी के छायावादी काव्य की मूलभूत प्रवृत्ति तो आधुनिक वैयक्तिकता से प्रेरित व्यक्तिवाद ही है । इस काल में विरचित प्रबन्ध काव्यों में तथा फुटकल रचनाओं में इसका चिह्न रहता है । अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण इस काव्य में बाह्यस्थूलता का चित्रण न होकर सूक्ष्मता का ही चित्रण मिलता है । चित्रात्मक भाषा, लाक्षणिक पदावली, विलक्षण अलंकार विधान, गेयात्मकता आदि विशिष्ट गुणों से अभिमण्डित छायावादी काव्य को हिन्दी काव्य क्षेत्र में विशेष महत्व प्राप्त हुआ । भाव एवं शैली के क्षेत्र में जबरदस्त क्रांति उपस्थित करने में छायावादी काव्य सफल हुआ ।

इस काल के सर्वश्रेष्ठ चार कवि माने जाते हैं -- जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी `निराला` तथा महादेवी वर्मा । ये ही चार कवि छायावादी काव्य के

१- हिन्दी साहित्यकोश - भाग १, पृ० ३२७.

चतुष्टय माने जाते हैं। इन कवियों के अतिरिक्त छायावाद काल के परिवृत में आने वाले दूसरे कवि हैं -- रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवि। इस कालमें छोटी व लम्बी कविताओं का ही अधिक प्राचुर्य रहा। इस काल में प्रबन्धकाव्य के भी कई प्रयोग हुए हैं। `जयशंकर प्रसाद जी का `कामायनी` छायावाद का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है, जो छायावादी काव्य के उत्कर्ष का निस्तुल्य निदर्शन है। प्रसाद जी की `आंसू`, पंत जी की `ग्रंथि,` निराला जी का `तुलसीदास` आदि इस काल के उत्कृष्ट खण्ड-काव्य हैं।

छायावादोत्तर काल देश एवं साहित्य दोनों में परिवर्तन को लेकर आविर्भूत हुआ। सदियों की गुलामी की कड़ी जंजीरों को तोड़ कर भारतभूमि स्वतंत्र हो गयी और स्वच्छन्द हवा में सांस लेने लगी। देश की यह स्वच्छन्दता तत्कालीन काव्यप्रवृत्तियों को नवीन मोड़ देने में भी सफल हुई। वस्तुत: इस युग में हिन्दी की काव्यधारा खूब विकसित हुई। कविता का ज्वार एक ओर जोर पकड़ता रहा तो दूसरी ओर प्रबन्ध काव्य का प्रणयन भी पर्याप्त मात्रा में हुआ। नितांत नूतन आदर्श तथा शिल्प की दृष्टि से नवीन प्रयोगों को लेकर ये काव्य उपस्थित हुए। पौराणिक प्रख्यात आख्यानों को मौलिक उद्भावनाओं के बल पर आधुनिक युग के नवीन परिवेश के अनुकूल नवीन रूप में प्रस्तुत करने का कवियों ने प्रयास किया है। धर्मवीर भारती की `कनुप्रिया,` `अन्धायुग,` दिनकर जी की `उर्वशी,` सुमित्रानंदन पंत का `लोकायतन` आदि इस दृष्टि से अधिक महत्व के हैं।

कविता या नयी कविता के युग में प्रबन्ध काव्यों का प्रभूत मात्रा में जो निर्माण हुआ, वह सचमुच आश्चर्यजनक है। अधिकांश काव्यों के विषय तो पुराने ही रह गये। लेकिन यह स्मरणीय है कि पुराने काव्य विषय उसी रूपमें प्रयुक्त नहीं हुए, लेकिन उसकी युक्ति-संगत, मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं के साथ ही वे अवतरित हुए। रश्मिरथि, शल्यवध, द्रौपदी, चक्रव्यूह आदि प्रबन्धकाव्य इसके अनुपम निदर्शन हैं। कथावस्तु से अधिक काव्यों में पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण तथा उनके अन्तर्द्वन्द्वों व संघर्षों को स्थान मिला। कतिपय

काव्यों में पौराणिक पात्र केवल प्रतीक रूप में होते हैं। उनकी आत्मा सदैव आधुनिक युग की रहती है।

अन्य कतिपय काल्पनिक काव्याश्रित काव्य भी अब निर्मित हुए, जो वस्तु, वस्तु-वर्णन तथा शैली के कारण नूतन हैं। बरगद की बेटी, गृहलक्ष्मी आदि इसके सुस्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करने वाले हैं।

विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण की नवीनता तथा काव्यशैली की नवता तथा मनोज्ञता के कारण छायावादोत्तर काव्यधारा का अपना विशेष महत्व है।

८- आधुनिक खण्डकाव्य

आधुनिक काल सभी साहित्यांगों के सर्वांगपूर्ण विकास की रंगभूमि है। खण्ड-काव्यों के विविध रूपों का अभूतपूर्व विकास इस काल में हुआ। आधुनिक काल में आकर काव्य भारती के प्रांगण में ठुमुक-ठुमुक कर आने वाली इस काव्यविधा का जो विलक्षण विकास हुआ उसे देखकर असीम आश्चर्य होगा। नवीन शैली के खण्डकाव्यों की रचना इस कालकी महान् उपलब्धि है। पहले ही इसका उल्लेख हो चुका है कि सन् १८८६ ई० में 'एकांत-वासी योगी' की रचना करके पण्डित श्रीधरपाठक ने इस युग में आख्यानक काव्य का श्रीगणेश किया। खड़ी बोली की यही प्रथम आख्यानक काव्यकृति है जो अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्ड स्मिथ के प्रख्यात काव्य 'द हरमिट' (The Hermit) का सुन्दर अनुवाद है। यह तो एक प्रेमाख्यानक काव्य है, इसके अनन्तर आपने गोल्डस्मिथ के काव्य 'डेजर्टिड विलेज' (Deserted village) का ब्रजभाषा में 'ऊजड़ ग्राम' तथा ट्रेवलर (Traveller) का खड़ी बोली में (श्रांत पथिक) अनुवाद किया।

श्रीधर पाठक के इस सुन्दर काव्यानुवादों ने हिन्दी कवियों को खूब प्रभावित किया। उसके प्रेमतत्व के सम्मोहक घेरे में वे कवि आ गये और सन् १९०५ ई० के लगभग श्री जयशंकर प्रसाद जी ने ब्रजभाषा में 'प्रेमपथिक' खण्डकाव्य की रचना की। 'पाठक जी के काव्यानुवादों ने प्रसाद में खण्डकाव्य की रुचि जगा दी, उनकी वर्णनात्मक कविता उनके

छोटे-छोटे खण्डकाव्यों (प्रेमपथिक, महाराणा का महत्व, करुणालय) में खड़ीबोली की नवीन शैली ग्रहण की ।"[1]

बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर कृत `हरिश्चन्द्र` और `उद्धवशतक` श्रेष्ठतम खण्डकाव्य हैं । दोनों की कथाएं पौराणिक हैं तथा वर्णन अत्यंत कुशलतापूर्ण हैं । सन् १९१० में राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त जी के `जयद्रथ वध` तथा `रंग में भंग` प्रकाशित हुए । जयद्रथ वध महाभारत के आख्यान के आधार पर विरचित है और रंग में भंग की कथावस्तु ऐतिहासिक है । सन् १९१४ में सियारामशरण गुप्त जी ने `मेवाड़ गाथा` खण्डकाव्य का प्रणयन किया । रामनरेश त्रिपाठी जी ने १९२० के लगभग तीन प्रमुख खण्डकाव्यों की रचना की । त्रिपाठी जी के तीनों खण्डकाव्य -- पथिक, मिलन और स्वप्न -- हिन्दी में अपना विशिष्ट स्थान रखने वाले हैं जो काल्पनिक कथावस्तु को लेकर लिखे गये । आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में -- "काव्य के क्षेत्र में जिस स्वाभाविक स्वच्छंदता का आभास पं० श्रीधर पाठक ने दिया था, उसके पथ पर चलने वाले द्वितीय उत्थान में त्रिपाठी जी दिखायी पड़े । मिलन, पथिक और स्वप्न नामक उनके तीनों खण्डकाव्यों में इनकी कल्पना ऐसे मर्मपथ पर चली है जिसपर मनुष्य मात्र का हृदय स्वभावतः ढलता आया है । ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओं के भीतर न बंध कर अपनी भावना के अनुकूल स्वच्छन्द संचरण के लिए कवि ने नूतन कथाओं की उद्-भावना की है । कल्पित आख्यानों की ओर यह विशेष झुकाव स्वच्छन्द मार्ग की अभि-लाषा सूचित करता है ।"[2]

गुप्त जी ने अपनी पच्चीसों खण्डकाव्य रचनाओं से हिन्दी खण्डकाव्यसंसार को चमत्कृत किया । जयद्रथ वध, पंचवटी नहुष, अनघ आदि आपके खण्डकाव्य, खण्डकाव्य के लक्षणों से सुसज्जित एवं सफल खण्डकाव्य हैं ।

१- युग और साहित्य - श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १७५.

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्लजी, १९ सं०, पृ० ५९९-६००.

सियारामशरण गुप्त जी के `मौर्य विजय`, `नकुल`, `सुनन्दा`, `अनाथ` आदि खण्डकाव्य भी कला की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के हैं। सन् १९२५ में जयशंकरप्रसाद जी ने `आंसू` नामक काव्य की रचना की। यह तो नवीन प्रयोग का, छायावादी शैली के उत्कर्ष का पोषक खण्डकाव्य है जिसकी कथावस्तु अत्यंत सूक्ष्म है। ग्रंथि[1] (१९२०), तुलसीदास[2] (१९३८), मुक्तियज्ञ[3] आदि अभिनव प्रयोग के उत्कृष्ट खण्डकाव्य हैं। ग्रंथि अपने ढंग का अनुपम खण्डकाव्य है जिसकी कथावस्तु काल्पनिक प्रेमकथा पर आधारित है। `तुलसीदास` संक्षिप्त भावात्मक शैली का बौद्धिकता प्रधान एवं मनोविज्ञान पर आधारित एक मनोरम खण्डकाव्य है। इसमें अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण हुआ है जो नवीन प्रयोग के खण्डकाव्यों का एक आवश्यक अंग सा बना हुआ है। माहेश्वरी सिंह का `सुहाग` नामक खण्डकाव्य प्रेम भावों की अनूठी कड़ियों से गुंथा गया एक शृंगार काव्य है। `आंसू` विप्रलम्भ शृंगार का अनूठा काव्य है तो `सुहाग` संयोग शृंगार काव्य का सुस्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करने वाला। छायावादी काव्य की विशेषताएं इन खण्डकाव्यों पर छूट-छूट कर पड़ी हुई हैं।

सन् १९४६ ई० में गुप्त जी का `नहुष` खण्डकाव्य प्रकाशित हुआ जिस का प्रणयन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर हुआ। १९४६ में प्रकाशित दिनकर जी का `कुरुक्षेत्र` काव्य भी उत्तम काव्य ग्रंथ है जिसमें युद्ध तथा शांति सम्बन्धी बातों पर विचार हुआ है। बंगाल का काल (१९४६) भी सामयिक महत्व रखने वाला एक खण्डकाव्य है जिसमें बंगाल के अकाल का मार्मिक चित्र खींचा गया है। सन् १९४७ ई० में काल्पनिक कथावस्तु पर आधारित श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का खण्डकाव्य प्रकाश में आया - `बरगद की बेटी`। दिनकर जी के `रश्मिरथी` काव्य का प्रकाशन भी १९५२ में संपन्न हुआ। इस बीच नकुल, विषपान (१९४६) सिद्धिम्बा, लक्ष्मणशक्ति, कर्ण (१९५०) जैसे पौराणिक खण्डकाव्य

१- ग्रंथि - सुमित्रानन्दन पन्त

२- तुलसीदास - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

३- मुक्तियज्ञ - सुमित्रानन्दन पन्त.

प्रकाश में आये तथा कारा (१९४६) गौरा वध (१९५०) अशोक (१९५१) जैसे ऐतिहासिक खण्डकाव्य भी प्रकाशित हुए । इसके उपरान्त भी खण्डकाव्यों की एक परम्परा ही चली । १९५० से १९६० ई० तक चांदनी रात और अजगर[1] (१९५२), शकुन्तला[2] (१९५३), शल्यवध[3], तप्तगृह[4] (१९५४), पांचाली[5], प्रयाण[6] (१९५५), सिंहद्वार[7], विद्युलोपाख्यान[8] (१९५६), अनासक्ति[9], सती सावित्री[10], गृहलक्ष्मी[11], तात्याटोपे[12], चंदेरी का जौहर[13], (१९५७), मीरलाल पद्मधर[14], दशानन[15], अग्निपथ[16], कच देवयानी[17] (१९५८), अमृतपुत्र[18], दानवीर कर्ण[19], अनुप्रिया[20], प्रेमविजय[21] (१९५९) जैसे असंख्य खण्डकाव्य प्रणीत हुए । छायावादोत्तर कालीन प्रमुख कवि नरेन्द्र शर्मा का खण्डकाव्य "द्रौपदी" मनोविज्ञान पर आधारित एक सफल रचना है । श्री विनोदशंकर व्यास जी का खण्डकाव्य "गुरुदक्षिणा" सन् १९६२ में प्रकाश में आया । इसी वर्ष प्राणार्पण[22], संशय की एक रात[23], कौंतेय कथा[24], स्वतंत्रता की

१- उपेन्द्रनाथ अश्क
२- मैथिलीशरण गुप्त
३- उग्रनारायण
४- केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'
५- रांगेय राघव
६- गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'
७- जीवन शुक्ल
८- भगवतीशरण चतुर्वेदी
९- राजेन्द्र आर्य
१०- गोपाल कौशिक
११- गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'
१२- लक्ष्मीनारायण कुशवाह
१३- आनन्द मिश्र
१४- तन्मय बुखारिया
१५- कैलाश तिवाड़ी
१६- अनूप शर्मा
१७- रामचन्द्र
१८- सियारामशरण गुप्ता
१९- गुरुपदम सोमवाल
२०- धर्मवीर भारती
२१- सेठ गोविन्ददास
२२- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
२३- नरेन्द्र शर्मा
२४- उदयशंकर भट्ट

बलिवेदी[१], महाराणी लक्ष्मीबाई[२] जैसे काव्य भी प्रकाशित हुए । सन् १९६५ में काका हाथरसी के हास्य व्यंग्यात्मक खण्डकाव्य का प्रकाशन हुआ --'काकदूत' । सन् १९६५ में उत्तरजय[३], पाषाणी[४], सौमित्र[५], रत्नावली[६], कुबरी[७], मुक्तियज्ञ[८], आत्मजयी[९] जैसे खण्डकाव्य निकले । 'अक्षय पौरुष'[१०], सुनन्दा[११] जैसे काव्य सन् ६६ में प्रकाशित हुए तथा चक्रव्यूह[१२] का प्रकाशन ६७ में हुआ । रत्ना की बात[१३], द्रौण[१४] जैसे काव्य सन् १९६८ में प्रकाशित हुए तथा परीक्षित[१५], कुटिया का राजपुरुष[१६] आदि खण्डकाव्य सन् ६९ में । सन् सत्तर में सुवर्णा[१७], प्रवीर[१८], शिवाजी[१९], मत्स्यांकुर[२०] जैसे काव्य निकले । सन् सत्तर के बाद भी खण्डकाव्यों का प्रणयन प्रभूत मात्रा में हो रहा है ।

समग्रत: विचार करने पर ज्ञात होगा कि आधुनिक काल में अधिक मात्रा में विभिन्न शैलियों के खण्डकाव्यों का निर्माण हुआ है । ये खण्डकाव्य भाव एवं रूप की दृष्टि से विशेष महत्व के हैं । परिवेशानुकूल परिवर्तन ने खण्डकाव्यों के अंतरंग तथा बहिरंग पर क्रांति की मुद्रायें पहनायी हैं । दरअसल, आधुनिक हिन्दी काव्य क्षेत्र में खण्डकाव्य नामक काव्यरूप का अपना अनूठा महत्व है ।

१- जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'
२- श्यामनारायण पाण्डेय
३- नरेन्द्र शर्मा
४- शरणबिहारी गोस्वामी
५- रामेश्वर
६- हरिप्रसाद 'हरि'
७- रामनारायण अग्रवाल
८- सुमित्रानंदन पंत
९- कुंवर नारायण
१०- शंकर सुल्तानपुरी
११- सियारामशरण गुप्त
१२- विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद'
१३- प्रेमनारायण टंडन
१४- रामगोपाल 'रुद्र'
१५- शांति भारद्वाज 'राकेश'
१६- विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'
१७- नरेन्द्र शर्मा
१८- केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'
१९- उमाकांत मालवीय
२०- नागार्जुन